भूपरिक्रमण

[मूल-सह-हिन्दी-अनुवाद]

डॉ० वासुकीनाथ झा
रीडर, मैथिली-विभाग
कॉलेज ऑफ कॉमर्स, पटना

बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्
पटना–८०० ००४

महाकवि विद्यापतिकृत

भूपरिक्रमण

[मूल-सह-हिन्दी-अनुवाद]

डॉ० वासुकीनाथ झा
रीडर, मैथिली-विभाग
कॉलेज ऑफ कॉमर्स, पटना

बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्
पटना

प्रकाशक :

बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्
आचार्य शिवपूजन सहाय मार्ग
सैदपुर, पटना–८००००४

प्रथम संस्करण, विक्रमाब्द २०४४;
शकाब्द १९०९; खृष्टाब्द १९८७

मूल्य : २०.०० रुपये

मुद्रक :
घनश्याम प्रेस
नवीन कोठी
पटना-८०००००-

महाकवि विद्यापतिकृत

भूपरिक्रमण

[मूल-सह-हिन्दी-अनुवाद]

विषयानुक्रम

	पृष्ठ-संख्या
भूमिका	क—ट
प्रथम प्रस्थान :	
नेमिदेश-द्रुपददेश-विवरणम्	१—५
दानवीरकथा	६—१०
द्वितीय प्रस्थान :	
ब्रह्मावर्त्तविवरणम्	११—१३
दयावीरकथा	१४—१७
तृतीय प्रस्थान :	
यज्ञभूमिविवरणम्	१८—२०
युद्धवीरकथा	२१—२६
चतुर्थ प्रस्थान :	
काशीक्षेत्रविवरणम्	२७—२९
सत्यवीरकथा	३०—३२
प्रत्युदाहरणकथा	३३—३९
पञ्चम प्रस्थान :	
सिद्धेशविवरणम्	४०—४२
भीरुकथा	४३—४६
षष्ठ प्रस्थान :	
नृसिंहतीर्थविवरणम्	४७—४८
सप्तम प्रस्थान :	
जनकदेशविवरणम्	४९—५१
कृपणकथा	५२—५३
अलसकथा	५४—५५
हिन्दी-अनुवाद : प्रथम प्रस्थान से सप्तम प्रस्थान ...	५६—९८
परिशिष्ट (क) : ग्रन्थस्थ श्लोकानुक्रमणी ...	९९—१०१
परिशिष्ट (ख) : ग्रन्थ में प्रयुक्त ग्राम और नगर ...	१०२—१०३
परिशिष्ट (ग) : ग्रन्थ में प्रयुक्त नदियाँ ...	१०४

वक्तव्य

महाकवि विद्यापति-विरचित संस्कृत-ग्रन्थ 'भूपरिक्रमण' के मूल-सह-हिन्दी-अनुवाद का प्रथम संस्करण प्रस्तुत करते हुए हमें सन्तोष एवं हर्ष की अनुभूति हो रही है। हम इसके विद्वान् सम्पादक प्रो० वासुकीनाथ झा के आभारी हैं कि उन्होंने हमारे अनुरोध को तत्परतापूर्वक कार्यान्वित किया।

किन्तु हमें दो बातों के लिए खेद है— प्रथमतः इसलिए कि परिस्थिति अनुकूल न रहने के कारण इसके प्रकाशन में विलम्ब हुआ और द्वितीयतः इसलिए कि इस संस्करण में सतर्कता के बावजूद कतिपय मुद्रण-दोष रह ही गये हैं, यद्यपि वे सामान्य हैं और उनके शुद्ध रूप का परिबोध सरलतापूर्वक हो सकता है। उदाहरणार्थ, पृष्ठ १७ पर 'समाप्ता' के स्थान पर 'सामाप्ता' मुद्रित हो गया है। उसी तरह पृ० ४५ पर 'नोपशेते जनो न कमला' की जगह 'नोपशेते न कमला' और पृ० ५५ पर 'पतिरेव' के बदले 'परितेव' मुद्रित है।

विज्ञ पाठकों के शोध-कार्यार्थ तो यह ग्रन्थ महत्त्वपूर्ण है ही, सामान्य पाठकों के लिए भी इसमें मार्गदर्शक तथा रोचक सामग्री सुलभ है। सुभाषितों से भी यह सुशोभित है। और, देश-देशान्तर-वर्णन तो इसका मुख्य उद्देश्य है ही।

हम आशान्वित हैं कि सुधी पाठक इस ग्रन्थ का भी व्यापक अभिनन्दन और उपयोग करेंगे, जिससे परिषद् के प्रकाशन-कार्य को प्रगति एवं प्रोत्साहन की प्राप्ति होगी।

आषाढ़ शुक्ल पञ्चमी, सं० २०४४ वि०
बुधवार, दिनांक १ जुलाई, १९८७ ई०

रामदयाल पाण्डेय
उपाध्यक्ष-सह-निदेशक

प्राक्कथन

परिषद् के विद्यापति-स्मारक अनुसन्धान-विभाग के माध्यम से प्रकाशित महाकवि विद्यापति के कोमलकान्त पदों के तीन खण्डों के साथ-साथ उनकी प्रथम अवहट्ठ रचना 'कीर्त्तिलता' और उनकी प्रथम नाट्यकृति 'गोरक्ष-विजय' का स्वागत कर सुधी पाठकों ने हमारा जो मान-वर्द्धन किया है, उसके लिए हम उनके प्रति हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करते हैं।

अब विद्यापति की प्रथम संस्कृत-रचना 'भूपरिक्रमण' आपके समक्ष प्रस्तुत करते हुए हमें अपार हर्ष का अनुभव हो रहा है। डॉ० विमानविहारी मजुमदार एवं डॉ० मुनीश्वर झा 'कीर्त्तिलता' के पूर्व की रचना मानते हुए, इसे विद्यापति की प्रथम प्रामाणिक रचना होने का श्रेय देते हैं। किन्तु, अधिकांश विद्वान् इसे 'कीर्त्तिलता' के बाद की रचना मानते और रचनाक्रम की दृष्टि से, इसे विद्यापति की दूसरी रचना बतलाते हैं। जो हो, यह विद्यापति की प्रथम संस्कृत-रचना है, इसमें सन्देह नहीं। इसकी रचना महाराज शिवसिंह के पिता महाराज देवसिंह की आज्ञा से हुई थी, जब वे 'नैमिषारण्य' में निवास करते थे।

विद्यापति की इस कृति के प्रकाशन से मेरे हर्ष का एक और विशेष कारण है। वह यह कि संस्कृत कॉलेज, कलकत्ता में सुरक्षित और देवनागरी लिपि में लिखी इस कृति के एकमात्र प्राचीन हस्तलेख का पुनरुद्धार आज से लगभग तीस वर्ष पूर्व मेरे ही माध्यम से हुआ था! बाद में, उसी दुर्लभ हस्तलेख के आधार पर डॉ० मुनीश्वर झा ने अपना संस्करण प्रकाशित कर विद्वानों के समक्ष प्रस्तुत किया।

संस्कृत कॉलेज, कलकत्ता के हस्तलिखित प्रभाग (पुस्तकालय) में सुरक्षित (नं० VI-७९) 'भूपरिक्रमण' का यह हस्तलेख वस्तुतः बहुत पहले विद्वानों की दृष्टि से ओझल हो गया था। इसी कारण, पं० शिवनन्दन ठाकुर सन् १९३० ई० के आसपास जब इसकी खोज में कलकत्ता गये थे, तब उन्हें यह हस्तलेख नहीं मिला था। इस हस्तलेख के स्थान पर उन्हें मिला था 'पाण्डव-विजय' नामक एक महाग्रन्थ, जिसके विषय में सन् १९३६-३७ ई० में रचित अपने सुप्रसिद्ध ग्रन्थ 'महाकवि विद्यापति' (पृ० ४८) में उन्होंने लिखा कि 'कलकत्ता के संस्कृत कॉलेज में 'पाण्डव-विजय' नाम की एक बड़ी पुस्तक है। पुस्तकों की तालिका में ग्रन्थकर्त्ता का नाम विद्यापति लिखा हुआ है, किन्तु दुर्भाग्यवश पुस्तक के आदिम और अंतिम भाग नहीं मिलने के कारण मैं इस परिणाम तक नहीं पहुँच सका कि वह पुस्तक विद्यापति-रचित है या रचयिता कोई अन्य कवि हैं।' सन् १९५८ ई० के दिसम्बर मास में, जब मैं स्वयं

परिषद् की ओर से, दूसरी बार बंगाल की यात्रा पर गया तब पं० श्रीठाकुर के संकेतानुसार मैंने उपर्युक्त 'पाण्डव-विजय' की परीक्षा की। कई दिनों के कठिन परिश्रम के पश्चात् मैं इस निष्कर्ष पर आया कि वस्तुतः यह महाग्रन्थ किसी अन्य महाकवि द्वारा रचित है, जिसे भ्रमवश संस्कृत कॉलेज के अधिकारी विद्यापति की रचना मानते रहे हैं। इस भ्रम का कारण यह हुआ कि उस कॉलेज के पुस्तकालय में, इस महाग्रन्थ (पाण्डव-विजय) और जगन्मोहन पण्डित-कृत एक दूसरे महाग्रन्थ 'षट्पञ्चासदेशावलीविवृति' से मिलाकर भूल से, विद्यापतिकृत 'भूपरिक्रमण' के सारे पत्र बीच-बीच में जहाँ-तहाँ घुसे पड़े थे और रचयिता विद्यापति के नामोल्लेखवाला अन्तिम पत्र अन्त में था। सम्भवतः इसी कारण पुस्तकालय के तत्कालीन अधिकारियों ने ग्रन्थों की सूची में, उक्त तीनों ग्रन्थों को 'पाण्डव-विजय' ही मानकर उन्हें विद्यापति के नाम पर दर्ज कर दिया। अपनी उस स्मरणीय यात्रा में, मैंने बड़े परिश्रम से 'भूपरिक्रमण' के एक हस्तलेखवाले सारे पत्र छाँटकर एक जगह सिलसिलेवार कर दिये और इस प्रकार उस यात्रा में, विद्यापति के 'भूपरिक्रमण' के उस एकमात्र हस्तलेख का पुनरुद्धार हुआ।[1] यात्रा से लौटकर यह शुभ सूचना जब मैंने डॉ० विमान-विहारी मजुमदार महोदय को दी, तब उन्होंने मुझे बहुत-बहुत बधाइयाँ दीं; क्योंकि अपने 'विद्यापति'-ग्रन्थ-सम्पादन के क्रम में वे भी कलकत्ता के अन्यान्य स्थानों के साथ-साथ जब वहाँ के संस्कृत कॉलेज-पुस्तकालय में 'भूपरिक्रमण' की खोज में गये थे, तब उन्हें भी वहाँ से निराश ही लौटना पड़ा था।

देवनागरी लिपि में लिखा इसका एकमात्र हस्तलेख अब संस्कृत कॉलेज, कलकत्ता के हस्तलिखित प्रभाग (पुस्तकालय) में स्वतन्त्र रूप से सुरक्षित है, जिसकी एक फोटोस्टाट-कॉपी बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् के विद्यापति-स्मारक अनुसन्धान-विभाग में मँगवाई गई है। देशी कागज पर लिखित इसमें कुल ५० पत्र हैं। लिखित रूप में कुल ९९ पृष्ठ हैं। अन्तिम पृष्ठ सादा है। प्रत्येक पृष्ठ में छह पंक्तियाँ हैं और प्रत्येक पंक्ति में ३२ से ३५ अक्षर। प्रत्येक पत्र में उसकी संख्या भी निर्दिष्ट है। इस हस्तलेख का परीक्षण करने के बाद पं० रमानाथ झा का अनुमान है कि यह मिथिलाक्षर में लिखित किसी प्राचीन हस्तलेख की, किसी कम पढ़े-लिखे व्यक्ति द्वारा देवनागरी लिपि की अत्यन्त भ्रान्तिपूर्ण प्रतिलिपि है। और, डॉ० मुनीश्वर झा की मान्यता है कि यह हस्तलेख ढाई-तीन सौ वर्षों से अधिक पुराना नहीं है। वैसे, उनका भी अनुमान है कि यह किसी मूलग्रन्थ की प्रतिलिपि है तथा इसके अन्त में लिपिकार ने जो लिपिकाल दिया है, उससे भी कुछ निष्कर्ष निकालना सम्भव नहीं है। श्रीराजेन्द्रलाल मित्र (हस्तलिखित ग्रन्थ-सूची, ग्रन्थ ६, सं० ७९०) एवं

---

१. द्रष्टव्य : परिषद् के विद्यापति-स्मारक अनुसन्धान-विभाग में सुरक्षित पश्चिम बंगाल की मेरी यात्रा-डायरी-१ (दिनांक १२ दिसम्बर, १९५८ ई०), पृ० ५

डॉ० उमेश मिश्र (विद्यापति ठाकुर, पृ० ७४) ने लिखा है कि इसका एक प्राचीन हस्तलेख एशियाटिक सोसाइटी, कलकत्ता में सुरक्षित है। किन्तु, बहुत ढूँढ़ने पर भी अब वहाँ उसका पता नहीं चलता। इसी प्रकार, दरभंगा के भौर ग्राम-निवासी पं० दामोदरसिंह ठाकुर अथवा म० म० पं० कृष्णसिंह ठाकुर के परिवार में भी इसके एक प्राचीन हस्तलेख के होने की बात कही जाती है। किन्तु, वहाँ भी अब इसका पता नहीं मिलता।

इस ग्रन्थ में, जैसा कि इसके आरम्भिक श्लोकों से स्पष्ट है, ग्रन्थकार ने पैंसठ देशों के वर्णन के साथ, चार खण्डों में, पैंसठ कथाओं को कहना चाहा था। किन्तु, इसमें हमें केवल नौ देशों के वर्णन-सहित कुल आठ कथाएँ ही प्राप्त होती हैं। और, ये आठों कथाएँ लगभग इसी रूप में 'पुरुषपरीक्षा' में आई हैं। अन्तर यही है कि 'पुरुषपरीक्षा' के प्रथम तीन श्लोक इसमें नहीं हैं और इसकी प्रथम कथा का आरम्भ 'पुरुषपरीक्षा' के चतुर्थ श्लोक से होता है। लगता है, इसके रचयिता की योजना पूरी न हो सकी और उसने बहुत अंशों में, उसे अपनी दूसरी कृति 'पुरुषपरीक्षा' में पूरी की। इस दृष्टि से, कुछेक लेखकों का यह कहना कि 'पुरुषपरीक्षा', 'भूपरिक्रमण' का ही बृहत् रूप है, सर्वांशतः ठीक है।

इसका प्रकाशन मिथिला संस्कृत-परिषद्, कलकत्ता-६ की ओर से सन् १९७६ ई० में, डॉ० मुनीश्वर झा के सुयोग्य सम्पादन में, पहले-पहल हुआ है। डॉ० वासुकीनाथ झा को इसके दूसरे संस्करण के सम्पादन का श्रेय मिल रहा है। संस्कृत, हिन्दी और मैथिली के मान्य विद्वान् डॉ० झा द्वारा सम्पादित इस परिमार्जित संस्करण की अपनी विशेषता यह है कि अबतक प्रकाशित-अप्रकाशित सम्पूर्ण सामग्री का बुद्धिमत्तापूर्वक उपयोग कर उन्होंने हमारे समक्ष प्रामाणिक पाण्डुलिपि तो प्रस्तुत की ही है, पहले-पहल 'भूपरिक्रमण' का हिन्दी-अनुवाद भी प्रस्तुत किया है। अपनी विद्वत्तापूर्ण भूमिका में उन्होंने जो विचार व्यक्त किये हैं, वे अनुसन्धायकों के लिए बड़े काम के हैं। मूल पाठ-संशोधन के साथ-साथ आवश्यक पाठान्तरादि प्रस्तुत कर उन्होंने अपने इस संस्करण को विशिष्ट बनाने का सफल प्रयास किया है।

'भूपरिक्रमण' के इस संस्करण के मुद्रण एवं प्रकाशन-क्रम में, परिषद् के भाषा-विशेषज्ञ पं० श्रीहेमचन्द्र झा और अवकाशप्राप्त वरीय प्रूफ-संशोधक श्रीरामकिशोर ठाकुर विशेष रूप से सहायक रहे हैं। श्रीझा एवं श्रीठाकुर इसके मूलपाठ के निरूपण एवं हिन्दी-अनुवाद के भाषा-संस्कार में उपयोगी रहे हैं। इनके अतिरिक्त प्रकाशन-विभाग के प्रकाशनाधिकारी श्रीश्रीकृष्ण शाह एवं वरीय प्रूफ-संशोधक श्रीरवीन्द्रनाथ कर्ण ने भी यथेष्ट योगदान किया है। अतः इन सभी व्यक्तियों को जितना भी धन्यवाद दिया जाय, कम ही होगा।

हमारे वर्तमान उपाध्यक्ष-सह-निदेशक पं० श्रीरामदयाल पाण्डेयजी ने इसके प्रकाशन में विशेष दिलचस्पी न ली होती, तो इसका प्रकाशन, सचमुच इतनी जल्दी नहीं हो पाता। परिषद्-प्रकाशनों और विशेषकर विभागीय प्रकाशनों के सन्दर्भ में आपके क्रान्तिकारी निर्णयों के लिए हम आपका सादर स्मरण करते हैं। हमारा विश्वास है कि आपके एवं अन्य सहयोगियों के सहृदय-सहयोग से विद्यापति के शेष ग्रन्थों के सुसम्पादित संस्करण भी आपके समक्ष प्रस्तुत करने में हम निश्चय ही सफल-मनोरथ होंगे। सधन्यवाद !

बृहस्पतिवार,
दिनांक २ जुलाई, १९८७ ई०

डॉ० बजरग वर्मा
उपनिदेशक
एवं
प्रभारी, विद्यापति-स्मारक अनुसन्धान-विभाग

भूमिका

पीठिका :

महाकवि विद्यापति ने संस्कृत, अवहट्ठ और मैथिली भाषाओं में अपनी काव्य-रचनाएँ प्रस्तुत करके अपने विलक्षण वैदुष्य और अप्रतिम रचना-कौशल का परिचय दिया है। विद्यापति के युग में बुद्धिजीवियों, विशेषतः मसिजीवियों के बीच, संस्कृत भाषा का ही प्रचलन था। प्राकृत और अपभ्रंश-युग के बाद आधुनिक भारतीय भाषाएँ प्रायः अपना स्वरूप ग्रहण कर रही थीं। इसलिए विद्यापति ने संस्कृत, अवहट्ठ और मैथिली को अपनाकर परम्परा-पालन और आधुनिकता-ग्रहण, दोनों का सम्यक् निर्वाह किया।

विद्यापति के समकालीन पण्डितों में शास्त्रीय रूढिबन्धन के प्रति विशेष आग्रह था। किन्तु, विद्यापति की वाणी में लोक-जीवन की चेतना और लोक-मंगल की भावना प्रचुर मात्रा में विद्यमान थी। इसलिए अपनी संस्कृत-रचनाओं में उन्होंने तद्युगीन जीवनादर्शों को विस्तृत आयाम दिया है। उनकी प्रबुद्ध और उन्नत सामाजिक चेतना का प्रत्यक्ष प्रमाण उनका संस्कृत-साहित्य है। जैसा कहा जा चुका है, उस समय नव्य-भारतीय आर्यभाषाएँ अपना स्वरूप स्थिर कर रही थीं एवं महत्त्वपूर्ण साहित्यिक अभिव्यक्ति का माध्यम बनने की ओर अग्रसर थीं। किन्तु उन भाषाओं में तब तक ऐसी क्षमता नहीं आ पाई थी कि समाज-प्रेरक उत्तरदायित्व का निर्वाह कर सकें। इसके लिए संस्कृत भाषा ही उपयुक्त थी। समाज-संचालन सदा शिक्षित और प्रबुद्ध-वर्ग द्वारा ही होता आया है, और उस समय भी होता था। विद्यापति स्वयं भी उसके एक महत्त्वपूर्ण अंग थे। राज्य-कार्य से सम्बद्ध एवं प्रबुद्ध-वर्ग के अग्रणी थे। इस दृष्टिकोण से भी उनके लिए संस्कृत भाषा ही उपयुक्त थी, इसलिए उन्होंने नीति, धर्म, लोकाचार आदि विषयक रचनाएँ संस्कृत भाषा में ही कीं। अर्थात् समाज और राष्ट्र के सैद्धान्तिक तथा व्यावहारिक उपयोग के लिए उन्होंने संस्कृत भाषा को ही अपनाया।

ग्रन्थ का स्वरूप :

'भूपरिक्रमण' ग्रन्थ विद्यापति की प्रथम संस्कृत-रचना माना जाता है। इसमें आठ क्षत्र और आठ कथाएँ सम्मिलित हैं। यद्यपि विद्यापति की योजना

थी कि इसे चार खण्डों में विभक्त कर और इसमें पैंसठ क्षेत्रों एवं पैंसठ कथाओं का सम्मिलित कर प्रस्तुत किया जाय।

पञ्चषष्टिदेशयुतां पञ्चषष्टिकथान्विताम्।
चतुष्खण्डसमायुक्तामाह विद्यापतिः कविः॥

किन्तु, लगता है, उनकी यह योजना पूरी नहीं हो सकी। या फिर, उनकी 'पुरुषपरीक्षा' ही इसी योजना का परिणाम हो; क्योंकि इस ग्रन्थ की कथाएँ आगे 'पुरुषपरीक्षा' में यथावत् सम्मिलित कर ली गई हैं। सिर्फ आरम्भ में वहाँ तीन श्लोक अधिक हैं। दोनों ग्रन्थों का उद्देश्य भी एक ही है, और प्रायः एक ही श्लोक दोनों स्थानों पर प्रयुक्त हुआ है :

नयानुरोधेन गुणेन वाचां कथा रसस्यापि कुतूहलेन।
बुधोऽपिवैदग्ध्यविशुद्धचेताः प्रपञ्चमाकर्णयिता न किं मे॥

पुरुषाः परिचीयन्ते पुरुषस्य परीक्षया।
तत्पुरुषपरीक्षेयं कथा सर्वमनः प्रिया॥

भूपरिक्रमण-ग्रन्थ की रचना विद्यापति ने शिवसिंह के पिता देवसिंह की आज्ञा से की थी, जो उस समय नैमिषारण्य के सूनपीठ में थे। इस ग्रन्थ में देवसिंह को राजा नहीं कहा गया है : 'देवसिंह निदेशाच्च नैमिषारण्यवासिनः' तथा 'देवसिंहस्य रुचये'। इसमें वर्णित आठो देश (क्षेत्र) विभिन्न स्थानों के हैं, जो नैमिषारण्य से जनकदेश जाने के मार्ग में पड़ते हैं। इसमें जनक की भूमि के लिए 'जनकदेश' शब्द का प्रयोग है, 'मिथिला' अथवा 'तिरहुत' का नहीं। इसमें जिन देशों के वर्णन आये हैं, वे हैं—द्रुपद, ब्रह्मावर्त्त, प्रयाग, काशी, सिद्धदेश, बलिदेश, भोजदेश तथा जनकदेश। ये सारे स्थान भारत के पूर्वोत्तराञ्चल में अवस्थित हैं। जनकदेश इन दिनों नेपाल का एक भाग है।

नामकरण :

इस पुस्तक के नाम के विषय में विद्वानों के बीच रोचक विवाद हुआ है। म० म० पं० परमेश्वर झा (१८८०—१९२४ ई०) के समय तक यह पुस्तक अज्ञात-सी थी। इसकी सूचना सबसे पहले पं० शिवनन्दन ठाकुर को मिली। उन्होंने इसका उल्लेख 'भूपरिक्रमा' नाम से किया।[1] म० म० हरप्रसाद शास्त्री-सहित

---

१. नामकरण के सम्बन्ध में विचार-विमर्श करने के क्रम में विद्वत्प्रवर पं० गोविन्द झा ने व्याकरण-सम्मत उपर्युक्त तर्क दिये हैं।

विद्यापति-वाङ्मय के कई अधिकारी विद्वानों ने भी इसका उल्लेख इसी नाम से किया और तब से विद्यापति की चर्चा के क्रम में यही नाम चलता रहा।

इस ग्रन्थ का एकमात्र हस्तलेख उपलब्ध है कलकत्ता के संस्कृत-कॉलेज-पुस्तकालय में। इधर इसकी कई प्रतियाँ तैयार कर ली गई हैं। लेकिन, मूलस्रोत एक ही है। यह मूल हस्तलेख अत्यन्त जीर्ण-शीर्ण है—इतना जीर्ण-शीर्ण कि कतिपय स्थलों पर शब्दों अथवा अक्षरों का अनुमान-मात्र करना पड़ता है। सम्भवतः इसी मूल प्रति के आधार पर प्रो० रमानाथ झा ने, बिहार विश्वविद्यालय-पत्रिका के प्रथम खण्ड (मार्च, १९५६ ई०) में एक शोधपूर्ण आलेख प्रकाशित किया था और प्रो० झा ने भी उसे 'भूपरिक्रमा' नाम से अभिहित किया। उन्होंने इसके 'नामकरण' पर विशेष रूप से विचार करने की आवश्यकता का अनुभव नहीं किया।

इधर डॉ० मुनीश्वर झा ने कलकत्ता संस्कृत-कॉलेजवाले उसी एकमात्र हस्तलेख के आधार पर इसका सम्पादन किया है और उन्होंने जब इसका नाम 'भूपरिक्रमण' (संस्कृत में 'भूपरिक्रमणम्') रखा तब मिथिला-क्षेत्र के कुछ विद्वानों ने इस नये नाम पर अपनी असहमति प्रकट की। फिर, पक्ष और विपक्ष में शास्त्रार्थ छिड़ा।

परिक्रमावादियों का कहना था कि मिथिला में 'परिक्रमा' शब्द ही तत्सम रूप में चलता रहा है, इसलिए विद्यापति ने यही नाम रखा होगा। उनके अनुसार पाण्डुलिपि की पुष्पिका को अधिक महत्त्व नहीं दिया जाना चाहिए; क्योंकि जो पाण्डुलिपि उपलब्ध है, वह किसी पण्डित की लिखी हुई नहीं है। इधर, परिक्रमणवादियों का कहना था कि मैथिली में भले ही 'परिक्रमा' शब्द प्रचलित हो, पर संस्कृत में यह शब्द न तो व्याकरण-सम्मत है और न कहीं प्रयुक्त है। अतः संस्कृत में 'परिक्रमणम्' या 'परिक्रमः' शब्द ही शुद्ध है। तदनुसार ही विद्यापति ने 'भूपरिक्रमण' नाम रखा है।

ज्यों ही शुद्धता की चर्चा छिड़ी, त्यों ही पाणिनि-व्याकरण के अनुसार वैयाकरणों ने इस शब्द पर अपने-अपने ढंग से विचार व्यक्त किये कहा गया कि क्रम् धातु से भाव में किसी विशेष प्रत्यय का विधान नहीं है, अतः 'भावे' (३/३/१८) सूत्र से 'घञ्' प्रत्यय होता है और चूँकि यह धातु उदात्त है, इसलिए 'नोदात्तोपदेशस्य...' इत्यादि (७/३/३४) सूत्र से वृद्धि का निषेध होता है और 'क्रम' बनता है। घञ् प्रत्ययान्त शब्द पुंल्लिग होता है। इसी तरह सभी धातुओं से भाव में 'ल्युट् च' (३/३/११५)—इस सूत्र से ल्युट् प्रत्यय विहित है, जिससे 'क्रमण' बनता है। 'क्रमा' रूप तभी बन सकता था जब आकारान्त स्त्रीलिंग शब्द बनानेवाला 'अ' प्रत्यय होता, किन्तु यह तो 'गुणेश्च हलः' (३/३/१०३)—इस सूत्र से केवल गुरुमान् हलन्त धातुओं से होता है; जैसे ईहा, ऊहा, कुण्ठा, भिक्षा

आदि। 'क्रम' धातु हलन्त तो है, पर इसमें दीर्घ स्वर तो नहीं है। अत: 'क्रमा' अशुद्ध है, फिर परिक्रमा भी अशुद्ध हो हुआ। यदि शिष्ट प्रयोग मिलता तो उस आधार पर भी इसे शुद्ध माना जाता, पर वह भी नहीं है। और, इस प्रकार, वैयाकरणों के शास्त्रार्थ में भो परिक्रमावादी परास्त हुए।

इस सम्बन्ध में एक दूसरा पक्ष भी है। इस ग्रन्थ को सात भागों (अध्यायों) में प्रस्तुत किया गया है। प्रत्येक में एक पुष्पिका (समापन-वाक्य) है और प्रत्येक पुष्पिका में ग्रन्थ का जो नामोल्लेख हुआ है, वह क्रमशः इस प्रकार है :

१. "इति विद्यापतिकविविरचिते भूपरिक्रमण ग्रन्थे दानवीर-कथा समाप्ता";

२. "इति विद्यापतिकविविरचिते भूपरिक्रमणे ब्रह्मावर्त्ते दानवीरकथा समाप्ता";

३. "इति विद्यापतिकविविरचिते भूपरिक्रमणे महाप्रयागविवरणे युद्ध-वीरकथा समाप्ता";

४. "इति विद्यापतिकविविरचिते भूपरि क्रमणग्रन्थे काशीतीर्थोभय-कथाविवृतिः समाप्ता";

५. "इति भूपरिक्रमणग्रन्थे बलदेवतीर्थयात्रायां सिद्धदेशविवरणे भीरु-कथा समाप्ता";

६. "इति भूपरिक्रमणग्रन्थे नृसिंहतीर्थविवरणं समाप्तम्"—

७. "इति विद्यापतिकृते भूपरिक्रमणग्रन्थे जनकदेशविवृत्यामलसकथा समाप्ता";

उपर्युक्त सातो पुष्पिकाओं (समापन-वाक्यों) में से चार में—'भूपरिक्रमण ग्रन्थे' और तीन में—'भूपरिक्रमणे' शब्द प्रयुक्त हुआ है। किसी भी स्थल पर 'भूपरिक्रमा' का प्रयोग नहीं हुआ है। इन सभी पुष्पिकाओं को लिपिकार की त्रुटि अथवा उनका भ्रम नहीं माना जा सकता। इतना ही नहीं, ग्रन्थ के आदि में प्रस्तावना या वन्दना में भी स्पष्ट उल्लेख है :

नत्वा गणपतिं साम्बं श्रीविष्णुं रविमम्बिकाम्।
भूपरिक्रमणग्रन्थो लिख्यते च भुवि नैमिषे॥

अतः इतने अन्त:साक्ष्यों तथा व्याकरण-सम्मत प्रयोगों के आधार पर इस ग्रन्थ का नाम 'भूपरिक्रमण' ही उपयुक्त प्रतीत होता है।

विषयवस्तु :

प्रारंभ में विद्यापति ने ग्रन्थ-रचना का उद्देश्य प्रकट किया है—'पुरुषाः परिचीयन्ते......'। अर्थात् वास्तविक पुरुष के लक्षणों-गुणों से परिचित कराना इसका उद्देश्य है। इतना ही नहीं, लोकसिद्धि के लिए नीति-शिक्षण और मनोरंजन भी इसका लक्ष्य रखा गया :

'नयानुरोधेन गुणेन वाचां कथा रसस्यापि कुतूहलेन'।

इस ग्रन्थ में कहा गया है कि नैमिषारण्य में ब्राह्मणों की सभा में अग्नि-पुराण का वाचन करनेवाले (सूत) को कृष्ण के बड़े भाई बलदेव ने सिर पर प्रहार कर मार डाला। ब्राह्मणवध के पाप के प्रायश्चित्त-स्वरूप बलदेव को विश्व के पवित्र (धार्मिक) तीर्थस्थलों की यात्रा करने का सुझाव दिया गया। अतः उन्होंने नैमिषारण्य से अपनी यात्रा आरम्भ की और द्रुपद की भूमि पर महाभारतकालीन ख्यातिप्राप्त ऋषि धौम्य से उनकी मुलाकात हुई। वे धौम्य को साथ लेकर अपनी यात्रा पर आगे बढ़े। रात को मनोविनोद और श्रम-निवारण के लिए धौम्य ने कथा कहना प्रारम्भ किया।

ग्रन्थ के प्रत्येक अध्याय में एक-एक देश का वर्णन है और एक-एक कथा कही गई है। अन्तिम दो अध्यायों में दो-दो स्थान-वर्णन और दो-दो कथाओं का समावेश किया गया है।

चन्द्रातपा नगरी के पारावार नामक राजा ने अपनी अपूर्व सुन्दरी कन्या पद्मावती के लिए योग्य वर ढूँढ़ने के उद्देश्य से वासुकि नामक ऋषि से विमर्श किया। प्रश्नोत्तर के क्रम में ऋषि ने पुरुषार्थयुक्त होने का लक्षण बतलाया और वीरों का उदाहरण, वर्त्तमान कलियुग के वीर पुरुषों की कथा के क्रम में, देना प्रारम्भ किया। सर्वप्रथम दानवीर विक्रमादित्य की कथा कही गई है। उसके बाद द्रुपददेश के विभिन्न तीर्थों का भ्रमण कर सौरिस्थान में रात्रि-विश्राम के समय दयावीर हम्मीरदेव की कथा कही गई है। फिर घूमते हुए तीर्थराज प्रयाग में आकर विश्राम के समय युद्धवीर मल्लदेव की कथा कही गई है।

चतुर्थ विश्राम-स्थल काशीक्षेत्र में सत्यवीर और प्रत्युदाहरणरूप में दोनों चौरकथाएँ कही गई हैं। पञ्चम विश्राम-स्थल गंगा और सरयू के संगम पर भीरुकथा, फिर, षष्ठ विश्राम-स्थल गंगा और सोन नदी के संगम पर कृपणकथा का वर्णन हुआ है। सातवें और अन्तिम विश्राम-स्थल जनक-देश के गौतमकुण्ड के समीप, अलसकथा कही गई है। इसी कथा के साथ ग्रन्थ समाप्त होता है।

रचना-शैली :

'भूपरिक्रमण' ग्रन्थ की रचना-शैली पौराणिक ही है। अर्थात् हितोपदेश या अन्य पुराणों की तरह इसमें कथा के अन्तर्गत कथाएँ गुम्फित की गई हैं।

ग्रन्थ में उपलब्ध वर्णनों से अनुमान किया जा सकता है कि विद्यापति ने मिथिला से नैमिषारण्य तक की यात्रा स्वयं की होगी। सम्भव है, वे देवसिंह के साथ ही नैमिषारण्य गये हों अथवा बाद में ही उनसे मिलने वहाँ गये हों। यह उस समय हुआ होगा जब मिथिला 'मलिक असलान' के अधिकार में थी, कीर्त्तिसिंह जौनपुर गये थे और देवसिंह नैमिषारण्य। इस प्रकार विद्यापति मिथिला से नैमिषारण्य के मार्ग में पड़नेवाले ऐतिहासिक, सांस्कृतिक और धार्मिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण स्थानों से अच्छी तरह परिचित हुए होंगे। और, अपने इसी ज्ञान का उपयोग उन्होंने इस ग्रन्थ के देश-वर्णन-क्रम में किया होगा।

यह विशेष रूप से ध्यातव्य है कि यह ग्रन्थ अपूर्ण है। विद्यापति की पैंसठ देश और पैंसठ कथाओं की योजना पूरी नहीं हो सकी; क्योंकि वे देवसिंह के साथ वापस आ जाने पर यात्रा में समय नहीं दे सके। कीर्त्तिसिंह की मृत्यु के बाद भोगीश्वर के वंश का अन्त हो गया और देवसिंह मिथिला-राज्य-संचालन के लिए बुलाये गये। इस प्रकार भूपरिक्रमण ग्रन्थ अपूर्ण ही रह गया। किन्तु, पुरुषार्थ-परिचायक नैतिक-ऐतिहासिक कथाएँ प्रस्तुत करने की बात उनके दिमाग से नहीं हटी और उन्होंने पौराणिक शैली का परित्याग कर 'पुरुषा-परीक्षा' नामक ग्रन्थ की रचना की। दुस्संयोगवश उसमें भी पैंसठ कथाओं की उनकी प्रतिज्ञा पूरी नहीं हो सकी; क्योंकि उसमें केवल अड़तालीस कथाएँ ही समाहित हैं और आठ कथाएँ 'भूपरिक्रमण' से यथावत् लेकर प्रथम परिच्छेद में रखी गई हैं।

विद्यापति का पुरुषार्थ-प्रतिपादक एक दूसरा ग्रन्थ है 'कीर्त्तिलता'। यह 'देसिल बअना' सदृश अवहट्ठ भाषा में है। संस्कृत और अपभ्रंश की परम्परा से विद्यापति पूरी तरह मुँह नहीं मोड़ सके थे। जो अपभ्रंश भाषा पहले प्रचलित थी, किन्तु तबतक प्रयोग से उठ चुकी थी, उसी का आंशिक प्रभाव और तत्कालीन भारतीय भाषा 'देसिल बअना' को अपनाने की ललक इस 'कीर्त्तिलता' में हम पाते हैं। उसमें कीर्त्तिसिंह की यात्रा और विजय-अभियान का वर्णन है। वहाँ भी कथा और यात्रा-विवरण दोनों को समन्वित रूप में लिया गया है।

स्वरूप, शिल्प और भाषा की दृष्टि से 'भूपरिक्रमण' और 'कीर्त्तिलता' विद्यापति की आरम्भिक कृतियाँ मालूम पड़ती हैं। उनकी रचना उस समय हुई होगी, जब कीर्त्तिसिंह, मिथिला राज्य को पुनः प्राप्त करके उसपर शासन कर रहे थे और देवसिंह अभी नैमिषारण्य में ही वास कर रहे थे। क्योंकि भूपरिक्रमण में देवसिंह के लिए 'राजा' शब्द का प्रयोग नहीं करके वर्त्तमान-कालिक क्रिया का 'लिख्यते' रूप प्रयुक्त हुआ है।

'भूपरिक्रमण' ग्रन्थ में वर्णित आठो कथाएँ पुरुषार्थ-परिचायक हैं। उस समय तत्कालीन मिथिला की ही नहीं, प्रत्युत सम्पूर्ण देश की स्वतन्त्रता बाधित थी। ऐसे

समय में मानव के शौर्य या पुरुषार्थ की कथा पूर्णतः उपयुक्त थी। इसी कारण विद्यापति ने शूरता (वीरता) का महत्त्व देते हुए दानवीर, दयावीर, युद्धवीर, सत्यवीर आदि कथाएँ प्रस्तुत की हैं। ये चारों कथाएँ अनुकरणीय हैं एवं इनके गुण ग्रहणीय हैं। इसी तरह चौर, भीरु, कृपण और अलस कथाओं में पुरुषार्थी व्यक्ति के लिए त्याज्य दुर्गुणों को प्रदर्शित किया गया है। अर्थात् अनुकरणीय और त्याज्य, विधि और निषेध—दोनों ही पक्ष इनमें आये हैं। इनमें वास्तविक मानव की पहचान के लक्षण दिये गये हैं।

पुरुषार्थ और पुरुषार्थवान् के सम्बन्ध में विद्यापति ने स्पष्ट लिखा है :

वीरः सुधो सेविद्यश्च पुरुषः पुरुषार्थवान् ।
तदन्ये पुरुषाकाराः पशवः पुच्छवर्जिताः ॥

तथा

वीरः शौर्यविवेकाभ्यामुत्साहेन च मण्डितः ।
मातापित्रोरलं कर्त्तुं कुले कुत्रापि जायते ॥
शौर्यं कार्पण्यराहित्यं विवेकोधीर्हिताहिते ।
क्रिया प्रवृत्तिरुत्साहो वीरस्तैस्तु भवेत् त्रिभिः ॥

'भूपरिक्रमण' के माध्यम से भौगोलिक ज्ञान के साथ-साथ पुरुषार्थ-शिक्षण भी उनका अभीष्ट था। अपनी 'कीर्त्तिलता' में भी उन्होंने पुरुषार्थ की गाथा गाई है :

पुरिसत्तेण पुरिसो नहि पुरिसो जम्मत्तेण ।
जलदानेनहु जलओ नहि जलओ पुञ्जिओ धूमो ॥

ग्रन्थ के उद्देश्य को स्पष्ट करते हुए उन्होंने लिखा है कि "नयानुरोधेन .... न किं मे।" अर्थात् नीति के आग्रह से, वाणी के गुण से, कथारस के कौतूहल से विदग्धगण भी क्या मेरी बात नहीं सुनेंगे ? तात्पर्य यह कि इसमें नीति, कथा-कौशल और ज्ञान की बातें हैं, जो विद्वानों को भी अवश्य अच्छी लगेंगी। वे अवश्य ही सुनेंगे।

इन कथाओं के माध्यम से राजनीति, समाजनीति, धर्मनीति, लोकनीति आदि विविध पक्षों को प्रस्तुत किया गया है। राजा के प्रति भावना, यश की कामना, अपात्र के हाथ में राज्य का अधिकार, अक्षम और सक्षम परिस्थितियों में कालक्षेप आदि जीवनोपयोगी बातें इन कथाओं के माध्यम से व्यक्त की गई हैं। इसमें इतिहास, नीतिकथा, भूगोल और धर्म का सफल सम्मिश्रण हुआ है। इससे विद्यापति की रचना-कला की विशिष्ट सक्षमता प्रकट होती है।

इतना ही नहीं, हितोपदेश की रचना-शैली ग्रहण कर भी उसमें अपने युग के पुरुषों की चर्चा कर उन्होंने इसे अधिक जीवन्त और आकर्षक बना दिया है।

विद्यापति ने कोशल, काशी, प्रयाग आदि तीर्थों में भ्रमण कर भूगोल-विद्या को अपनाया था। साथ-ही-साथ व्यावहारिक शिक्षण के लिए भूगोल-विद्या को उपयुक्त समझकर उसका प्रचार करना भी उनका अभीष्ट था। किन्तु, धर्मप्राण हिन्दुओं में प्रचार करने के लिए उसपर धर्म का रंग चढ़ाना आवश्यक था। इसलिए शापग्रस्त बलराम को तीर्थयात्रा के रूप में उन्होंने तीर्थों का वर्णन किया।[1]

इस ग्रन्थ में भौगोलिकता का समावेश अच्छी तरह किया गया है। एक स्थान से दूसरे स्थान की दूरी योजन और कोसों में बताई गई है। उन स्थानों की अवस्थिति, नदी आदि की चर्चा प्रायः सब जगह आई है। धार्मिक स्थलों, उनकी प्रमुख विशेषताओं तथा प्रसिद्धियों की चर्चाएँ भी हुई हैं, जिससे वर्णित स्थान की सुस्पष्ट धारणा पाठकों के मन में बन सके और सम्बद्ध स्थानों की महत्ता का परिचय उन्हें मिल सके।

पुराणादि के रचना-स्थल और ऋषि-मनीषियों के साधना-स्थल नैमिषारण्य के वर्णन से प्रारम्भ कर द्रुपददेश की राजधानी पृथुका, शातनीपुर, वेणुपुर, द्रुपदपुर आदि गाँवों, भैरव-स्थान आदि के भी वर्णन आये हैं। इसी तरह ब्रह्मावर्त्त, लघु ब्रह्मावर्त्त, उनका महत्त्व आदि भी वर्णित हैं। इसी क्रम में विभिन्न गाँवों, नगरों और राजधानियों का वर्णन किया गया है। इसके साथ ही, धार्मिक स्थलों के सजीव वर्णन एवं प्रत्येक स्थान की विशेषता के साथ-साथ प्रमुख सांस्कृतिक पक्षों के संकेत भी दिये गये हैं। भारतीय वाङ्मय में यद्यपि स्थान-वर्णन की परम्परा प्राचीन है तथापि विद्यापति ने इस क्षेत्र में अपनी विशिष्ट प्रतिभा का परिचय दिया है। उनके स्थान-वर्णनक्रम में भूगोल के साथ-साथ धर्म और संस्कृति का सफल सम्मिश्रण हो पाया है। परिणामतः इससे मध्ययुगीन उत्तर-भारत के स्थानिक इतिहास से सम्बद्ध तथ्यों का एकत्र संग्रह सरलतापूर्वक उपलब्ध हो जाता है।

'भूपरिक्रमण' में भूगोल, इतिहास एवं नीति के साथ-साथ धार्मिक विचारों का समन्वय भी अत्यन्त सफलतापूर्वक किया गया है। ग्रन्थ के आदि श्लोक में ही अनेक देवी-देवताओं की वन्दना की गई है :

"नत्वा गणपतिं साम्बं श्रीविष्णुं रविमम्बिकाम्

इसमें गणपति, साम्ब, श्रीविष्णु, सूर्य और अम्बिका--इन पाँचों को प्रणाम निवेदित है।

---

१. वीरेन्द्रकुमार करनुवाला : विद्यापति-विभा, पृष्ठ १३२

'पुरुषपरीक्षा' में भी इसी प्रकार के भाव की पुनरावृत्ति हुई है :

विष्णुं केऽपि निवेदयन्ति गिरिजानाथं च केचित्तथा
ब्रह्माणं प्रभुमुल्लपन्ति भुवने नाम्नैव भिन्नं महः।
निर्णीतं मुनिभिः सतर्कमतिभिश्चेद्विश्वमेकेश्वरं
तच्चिन्तापरमानसे त्वयि पुनर्भिन्ना कुतो भावना ।।

(पु० प०, चतुर्थ परिच्छेद)

'भूपरिक्रमण' की रचना विद्यापति ने पुराणों, तन्त्रों, काव्यों आदि के गहन अध्ययन के पश्चात् ही की होगी ।

पुराणानि च तन्त्राणि काव्यानि त्रिमतीषया ।
विलोक्य राजप्रबन्धानि नवरत्नं कृतानि च ।।

(भूपरिक्रमणम्)

इसमें राज्य-संगठन की विधियों, तन्त्रों तथा पुराणों के सार अत्यन्त कुशलतापूर्वक संगृहीत हैं। विद्यापति से पहले भी चण्डेश्वर ने 'कृत्यरत्नाकर' की प्रस्तावना में इस तरह के प्रयास किये थे :

नाना श्रुतिस्मृतिकदम्बपुराणराशि
गौडेतिहास निकुरम्ब महागमा नाम्।
तं तं विरोधमवधूय बुधेन कृत्य।
रत्नाकरोऽयमनुना विहितो हिताय ।।

(कृत्यरत्नाकर : प्रस्तावना)

विद्यापति के युग में विभिन्न धार्मिक सम्प्रदायों की एकता पर बल दिया जाता था। अतः उन्होंने भी उसी मार्ग का अनुसरण किया, जिससे समाज विशृंखलित न होकर एकता को ओर अग्रसर हो ।

भूपरिक्रमण ग्रन्थ में विद्यापति ने सर्वत्र अपने को एक कवि के रूप में प्रस्तुत किया है; यथा—'इति विद्यापतिकविविरचिते', 'आह विद्यापतिः कविः', 'विद्यापतिः कविर्महान्' आदि। यह उनकी प्रथम संस्कृत-रचना या आरम्भिक संस्कृत-रचना भले ही हो, किन्तु इसमें वे स्वयं अपनी काव्य-भावना के प्रति सतत जागरूक प्रतीत होते हैं। इस ग्रन्थ में काव्यात्मकता लाने का उन्होंने भरपूर प्रयास भी किया है। जहाँ नीति-विषयक सैद्धान्तिक बातें कही गई हैं वहाँ भी उनकी काव्यात्मकता उजागर हुई है।

यह ग्रन्थ चूँकि यात्रा-वर्णन है, भौगोलिक है, पुरुषार्थ-प्रेरक है, इसलिए कथाओं के रहते हुए भी सम्पूर्ण ग्रन्थ में शृङ्गार अथवा प्रेम की कोई चर्चा नहीं

है। शायद रचनाकार ने पुरुषार्थ की कठोरता के लिए कोमल वृत्ति को प्रश्रय देना उचित नहीं समझा।

यद्यपि यह विद्यापति की प्रथम संस्कृत-रचना मानी जाती है, तथापि यह सिद्ध है कि संस्कृत भाषा पर प्रारम्भ से ही उन्हें अधिकार रहा है। उनकी शैली में स्वाभाविकता, सरलता, प्रवाहमयता आदि सर्वत्र विद्यमान हैं। लगता है, वे संस्कृत को जनसामान्य तक पहुँचाना चाहते थे। अतः क्लिष्ट भाषा का उन्होंने परित्याग कर दिया। सरल भाषा, स्पष्ट वाक्य और परिचित शब्दावली का प्रयोग—उनकी संस्कृत की विशेषता है। उन्होंने अपनी संस्कृत में आञ्चलिक या प्रचलित क्षेत्रीय शब्दों का प्रयोग कर भाषा-सम्बन्धी क्लिष्टता दूर करने का प्रयास किया है। यथा—

परिपाट्या (परिपाटी से), सहन्ते (सहते हैं), कटाहः (कड़ाह), तुरुष्क (तुर्क,), परुत् (परुकां, अगले वर्ष), व्यवस्यति (व्यवस्था कर सकता है), लगति (लगता है), पोटलिकं (पोटली, गठरी) आदि। सर्वत्र भाव और भाषा की सहजता और स्वाभाविकता विद्यमान हैं। न तो वाक्य-विन्यास में दुरूहता है और न भाव-संप्रेषण में। गद्य-पद्य दोनों ही रचनाएँ प्रसाद गुण से समन्वित हैं। सामासिक शब्दों का प्रयोग अत्यल्प है और जो है भी वह लघुकाय ही है, जिससे बोधगम्यता निर्बाध बनी हुई है। काशीक्षेत्र-विवरण के क्रम में एकाध स्थल पर अर्थ और वाक्य का असन्तुलित गठन दृष्टिगोचर होता है। किन्तु, वह अवश्य ही लिपिकार के प्रमाद से हुआ होगा।

'पुरुषपरीक्षा में' सर्वत्र 'हम्बीरदेव' और 'बलाह' प्रयुक्त है, किन्तु इस ग्रन्थ में 'हम्मीरदेव' और 'बडाह' का प्रयोग हुआ है। इसी तरह 'यवन' के बदले 'जवन' शब्द का प्रयोग दृष्टिगत होता है।

युद्धवीरकथा के अन्त में 'पुरुषपरीक्षा' की पंक्तियों से इसमें दो पंक्तियाँ अधिक हैं।

चौरकथा के मध्य कुछ पंक्तियाँ 'पुरुषपरीक्षा' में अधिक हैं, जो 'भू-परिक्रमण' में नहीं हैं। यथा—

[द्वितीयेनोक्तं—यमहं रात्रौ पश्यामि दिवा तं परिचिनोमि। तृतीयेनोक्तं—यस्य गृहोपरि हस्तमहं ददामि, तस्य गृहस्य धनानि जानामि। चतुर्थेनोक्तं—सन्धिदेय स्थाने यावती रेखा क्रियते मया तावती सन्धिर्विनाऽऽयासेन भवति। पश्चाद्राज्ञाभिहितम्—ममाग्रे बद्धो न तिष्ठति।]

इसी तरह भीरुकथा में भूपरिक्रमण के बीच में दो श्लोक अधिक हैं: "भीरुं नोपशेते......मीलितम्"। इतना ही नहीं, कथा के अन्त में ये दोनों श्लोक दुहराये गये हैं।

एक बात ध्यान देने योग्य है कि कथा-प्रस्ताव के क्रम में 'पुरुषपरीक्षा' में सुबुद्धि नामक ऋषि से जिज्ञासा की जाती है, किन्तु 'भूपरिक्रमण' में यहाँ ऋषि का नाम 'वासुकि' दिया गया है।

ग्रन्थ में कुल ८४ श्लोक प्रयुक्त हुए हैं, जिनमें प्रथम प्रस्थान में १९, द्वितीय में ७, तृतीय में १४, चतुर्थ में २२, पंचम में ११ और सप्तम में ११। षष्ठ प्रस्थान में एक भी श्लोक का समावेश नहीं हो पाया है।

यद्यपि संस्कृत-साहित्य में इतिहास और पुराणादि-विषयक अनेक ग्रन्थ हैं तथा भू-विवरण की परम्परा महाकाव्यों में भी मिलती है, फिर भी विद्यापति के 'भूपरिक्रमण' में इसका प्रयोग विशिष्ट रूप एवं अर्थ में हुआ है। विषय-वस्तु, रचनाशिल्प, धार्मिक वर्णन, स्थानगत परिचय, नीतिगत शिक्षण—सभी ऐतिहासिक-भौगोलिक ढाँचे के अन्दर काव्यगत सुषमा से मण्डित हैं।

इस ग्रन्थ की एकमात्र पाण्डुलिपि भी जीर्ण रहने के कारण सुपाठ्य नहीं है। अतः सम्पादन में अनेक स्थलों पर अनुमान का सहारा लेना पड़ता है। फलतः त्रुटि की सम्भावना स्वाभाविक ही है। फिर भी इसके प्रकाशन से विद्यापति-साहित्य की एक महत्त्वपूर्ण शृंखला से पाठक परिचित होंगे, ऐसा हमारा विश्वास है।

बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् की ओर से इस ग्रन्थ के सम्पादन का विशेष आग्रह आदरणीय पं० रामदयाल पण्डेयजी (उपाध्यक्ष-सह-निदेशक) और आदरणीय बन्धु डॉ० बजरंग वर्मा की ओर से हुआ। इनके स्नेह और सौहार्द के प्रति धन्यवाद प्रकट करना मात्र औपचारिकता होगी।

विद्यापति-स्मारक अनुसन्धान-विभाग की उपसमिति के सदस्यों-सहित परिषद् के उन सभी पदाधिकारियों एवं सहयोगियों को भी मैं धन्यवाद देता हूँ, जिनकी कृपा से मैं सदा अभिभूत होता रहा हूँ और जिनके सहयोग से इस ग्रन्थ का प्रकाशन हो सका।

वासुकीनाथ झा

प्रथम प्रस्थान

नेमिदेश-द्रुपददेशविवरणम्

नत्वा गणपतिं साम्बं श्रीविष्णुं[1] रविमम्बिकाम्[2] ।
भूपरिक्रमणग्रन्थो[3] लिख्यते च भुवि नैमिषे ॥
देवसिंहनिदेशाच्च नैमिषारण्यवासिनः[4] ।
शिवसिंहस्य[5] च पितुः सूनपीठ निवासिनः ॥
पञ्चषष्टिदेशयुतां पञ्चषष्टिकथान्विताम् ।
चतुष्खण्डसमायुक्तामाह विद्यापतिः कविः ॥
पुराणानि च तन्त्राणि काव्यानि त्रिमनीषया ।
विलोक्य च राज-प्रबन्धानि[6] नवरत्न कृतानि च ॥
देवसिंहस्य रुचये विद्यापतिः कविर्महान् ।
वक्तुमारब्धवान् तत्र नानाप्रस्थानसंयुताः ॥
अग्निपुराणवक्तारं सूतं वह्निसमुद्भवम् ।
जघान बलदेवो हि मस्तकं ऋषिमण्डले ॥
ब्रह्महत्यायुतो देवो मुनिवाक्यान्महीपते[7] ।
आरेभे पापशान्त्यर्थं पृथिव्या हि प्रदक्षिणाम् ॥
प्रथमं नैमिषं त्यक्त्वा द्रुपददेशं जगामह ।
यत्र काली महामाया गङ्गायास्तीर मध्यतः ॥

---

१. हस्तलेख में 'विष्णुरंवि' पाठ है ।
२. " " 'मंविका' है, 'म्' छूटा हुआ है ।
३. " " 'ग्रन्थ' ।
४. " " 'नैमिषिरण्य' ।
५. " " 'सिवसिंहस्य' ।
६. " " 'प्रवधानि' ।
७. " " 'वाक्यात्' ।

शतार्द्धं क्रोशपरिमिता पुरत्रयमिता सदा ।
राजधानी च पृथुका त्रिशत[1]ग्रामसंयुता ॥
शृङ्गवेरग्राममुखा ह्यगण्यादह्नक्रिया ।
नरनारी प्रभृतयो न भ्रष्टा यत्र भूपते ॥
त्रिदिवसं तत्र स्थित्वा च बलदेवो हि भूपतिः[2] ।
नानाव्रनादिभिः पूजां[3] कामपालश्चकार ह ॥
शातनीपुरे[4] बलदेवश्च भैरवीं त्रिदशेश्वरीम् ।
संपूज्य विधिवद्भक्त्या कालकोटं जगामह ॥
यत्र द्रुपद[5]भूपस्य शस्त्रागारं सजीवनम् ।
हुतासनं च तत्र पूज्य कालिकां[6] तटिनीतटे ॥
किंशुक काननान्ते च वेणुपुरं ददर्श ह ।
तत्र योगिजातिवासः नाथदेवो हि सेव्यते ॥
भानुमन्तस्य भूपस्य मालवदेशनिवासिनः ।
काष्टाग्रामनिवासिनं धौम्यं मुनि सर्वज्ञमीश्वरम् ॥
होरजपुरात्समानीतं भूपालदेश पवित्रकम् ।
द्रुपदपुरे मेलनं च कृतं च हलिना मुनेः ॥
चातुर्य्यार्थं प्रवासेषु गद्यपद्यमयेन च ।
वचसा कौतुकं वक्तुमुपचक्रमे हलं प्रति ॥
नानादेशीय राजन्य वैश्ययोश्चरितान्विताम् ।
प्रहर्षणार्थं देवस्य भाविभूतकथान्विताम् ॥

---

१. हस्तलेख में 'त्रिंशत' है ।
२. ,, ,, 'भूपति' है ।
३. ,, ,, 'पूजा' है ।
४. ,, ,, 'शातनीपुरं' है ।
५. ,, ,, 'द्रुपदे' है ।
६. ,, ,, 'कालिका' है ।

द्रौपदीहरणस्थाने विल्वकाननमध्यत;
दर्भासने समासीनो[१] रात्रौ धौम्यो महामुनिः।
प्रोवाच बलदेवाय कथां श्रमनिवारणे ॥

त्रिकालज्ञमुनिरुवाच—

[२]नयानुरोधेन गुणेन वाचां
कथारस्यापि कुतूहलेन।
बुधोऽपि वैदग्ध्यविशुद्धचेताः
प्रपञ्चमाकर्णयिता न किं मे ॥[३]
भाविकथां कलिसार्थां यथा भूप विचेष्टिताम्।[४]
कथयामि कामपाल तव ज्ञान विवृद्धये ॥
पुरुषाः परिचीयन्ते पुरुषस्य परीक्षया।[५]
तत्पूरुषपरीक्षेयं कथा सर्वमनः प्रिया ॥

आसीदासमुद्रक्षिति (पति) सहस्रशिरोमालारजोरञ्जितपादपद्मो नगर्यां चन्द्रातपायां[६] पारावारो[७] नामराजा। तस्य सर्वावयवसुन्दरी सर्व-

१. हस्तलेख में 'समासीनं' है।

२. हस्तलेख में 'नवानु' है।

३. 'पुरुषपरीक्षा' के कुछ संस्करणों में यहाँ पाठभेद दिखाई देता है :
(अ) रमानाथ झा के संस्करण में—प्रबन्धमाकर्णयिता न मे किम् (पृ० ३)
यद्यपि पं० झा ने भी पाद-टिप्पणी मे 'किं मे' उल्लिखित किया है।
(आ) डॉ० मुनीश्वर झा ने 'भूपरिक्रमणम्' ग्रन्थ में 'किं मे' ही रखा है। (पृ० ३)
(इ) डॉ० सुरेन्द्र झा 'सुमन' ने भी 'किं मे' को ही स्वीकार किया है। (पृ० २)

४. हस्तलेख इस प्रकार है :
भाविकथां कलिसायचं यद्यद्भूप विचेष्टिता
कथयामि कामपात तव ज्ञान विवृद्धये

५. 'पुरुषपरीक्षा' में पाठ इस प्रकार है :
युक्तेरस्याः परीक्षया।

६. हस्तलेख में 'चंद्रातपां' है।

७. " " 'पारावरा' है।

लक्षणसम्पूर्णका पद्मावती नाम कन्या बभूव। तस्याश्च शैशवापगममवलोक्य स राजा तदनुरूपं स्वकुलयोग्यं च वरमनुसन्दधानः सचिन्तो बभूव। यतः —

अव्यापार पराङ्मुखस्य विततन्याभ्युतपात्तश्रियो
भुञ्जानस्य सदैव पथ्यमरुजो रोषादिदोषद्विषः।
योग्यायोग्यवरानुनाथनविधावभ्यर्थनाभङ्गभी-
श्चिन्तामातनुते सतोऽपि हृदये स्वस्थस्य[१] कन्यावतः॥

ततः किं करवाणीति वासुकीय नामानमृषिमपृच्छत्। तथाहि—

नैकाकी निर्णयंकुर्यादिष्टे कृत्यविधौ[२] क्वचित्।
सम्भवन्ति बुधस्यापि दोषाद्वेष भ्रमादयः॥

राजोवाच मुने! ममेयं पद्मावती कन्या विद्यते। तरकमेतस्या वरं करवाणीति विमृष्यादिशतु[३] भवान्। मुनिरुवाच। पुरुषं वरं कुरु। राजोवाच। मुने! कथमपुरुषोऽपि वरः सम्भवति? मुनिरुवाच। राजन्! पृथिव्यां बहवः पुरुषाः पुरुषाकाराः[४] वसन्ति। तान्पुरुषाकारान्[५] परित्यज्य पुरुषं वरयेति[६] ब्रवीमि। तथाहि—

लभ्यन्ते पुरुषाकाराः पुरुषः खलु दुर्लभः।
वक्ष्यमाणेन चिह्नेन निखिलेनोपलक्षितः॥[७]

तद्यथा—

वीरः सुधीः सविद्यश्च पुरुषः पुरुषार्थवान्।
तदन्ये पुरुषाकाराः पशवः पुच्छवर्जिताः॥

राजोवाच। तत्र[८] वीरादयः कथं परिचेतव्याः? मुनिरुवाच—

वीरः शौर्य विवेकाभ्यामुत्साहेन च मण्डितः।
मातापित्रोरलङ्कर्त्तुं कुले कुत्रापि जायते॥

---

१. हस्तलेख में 'स्वस्य'
२. " " 'विधे'
३. " " 'विमर्ष्यादिशतु'
४. " " 'पुरुषाकार'
५. " " 'तत्पुरुषाकारान्'
६. " " 'वर इति'
७. " " 'निखिलेनापि'
८. " " 'तरावत्रीरादयः'

शौर्यं कार्पण्यराहित्यं विवेको धीर्हिताहिते ।
क्रियाप्रवृत्तिरुत्साहो वीरस्तैस्तु भवेत् त्रिभिः ॥

स च चतुर्विधः—दानवीरो दयावीरो युद्धवीरः सत्यवीरश्च । तद्यथा—

दानवीरो हरिश्चन्द्रो दयावीरः शिविर्नृपः ।
युद्धवीरो भवेत् पार्थः सत्यवीरो युधिष्ठिरः ॥

राजोवाच । मुने ! ते युगान्तरे पुरुषाः कलौ न शिक्षायामुपमानतां यान्ति । यतः —

कलौ शिक्षोहेतुर्न खलु कृत जातस्य चरितं
क्रियायां दृष्टान्तः समयकृत भेदो न घटते ।
न सा बुद्धिः पुंसां न च वपुषि तेजस्तदधुना
न वा सत्त्वं[1] तादृक् कलिसमयसञ्जातजनुषाम् ॥

ततः कलिसमयसम्भूतानामेव पुरुषाणां कथाभिः परिचाययतु मां वीरं भवान् । मुनिरुवाच—

सत्ये त्रेतायुगे चैव द्वापरे भूभुजान्वयः ।[2]
कथितः सूरिभिः पूर्वैः[3] कथ्यते वै[4] कलौ मया ॥

१. 'सत्यं'—'पुरुषपरीक्षा' (र० झा, पृ० ५ और 'सुमन', पृ० ४)
२. 'भूभुजोऽन्वयः'—'पुरुषपरीक्षा' (र० झा०, पृ० ५; 'सुमन', पृ० ४)
३. 'सर्वैः'—'पुरुषपरीक्षा' (र० झा, पृ० ५)
४. 'च'—'पुरुषपरीक्षा' (र० झा, पृ० ५)

दानवीरकथा

तत्र प्रथमं दानवीरकथा तावत्प्रस्तूयते। यतः—

स्मृतेनोच्चार्यमाणेन यत्नादाकर्णितेन च।
नाम्नाऽपि[1] दानवीरस्य शुभं सर्वत्र जायते॥

आसीदुज्जयिनी नाम राजधानी। तस्यां विक्रमादित्यो नाम राजा बभूव। स चैकदा सिंहासनोपविष्टः केनापि वैतालिकेन पठ्यमानं श्लोकमेकं शुश्राव। तद्यथा—

विप्रैः सन्तुष्टचित्तैः प्रमुदितहृदयैर्वन्दिभिर्लब्धकामै-
र्भृत्यैः सिद्धाभिलाषैर्दिगवनिपतिभिर्वश्यतामाश्रयद्भिः।
विद्वत्सार्थैः कृतार्थैः[2] दिशिदिशि सुभटैः काञ्चनाभ्यर्च्यमानै-
र्नित्यं संस्तूयमानः स जयति नृपतिर्दानवीरो वडाहः[3]॥

ततो राजा पठन्तं वैतालिकमब्रवीत्—रे रे वैतालिक![4] कस्तव नृपति-र्बलाहः[5]? केन दर्पेण तस्योत्कर्षं मम पुरतः प्रस्तौषि? वैतालिक उवाच—देव! मम वृत्तिरियं वैतालिकस्य यद्वीराणां यशः परितः प्रस्तूयते। तथाहि—

शूरान्निरोधयति[6] बोधयति प्रमत्तान्
कौत्सं विमोचयति कापुरुषान् वचोभिः।
ब्रूते विपक्षवचनं पुरतो नृपाणाम्
वैतालिकः कृपणतां म्रियते न याति॥

---

१. हस्तलेख में 'नाम्ना' मात्र है।
२. ,, ,, 'कृतार्थैः' नहीं है, किन्तु 'पुरुषपरीक्षा' में उपलब्ध है।
३. 'पुरुषपरीक्षा' में 'बलाहः' पाठ है।
४. हस्तलेख में 'वैवाहक' पाठ है।
५. ,, ,, नृपतिर्व्वडाहः' पाठ है।
६. 'पुरुषपरीक्षा' : (क) नियोधयति (र० झा, पृ० ६)
(ख) निबोधयति (सुमन, पृ० ५)

अतएव मामर्थेशूराः परितोषयन्ति, अहं च तेषामङ्कुरितं यशः[१] प्रतिदिशं पल्लवयामि। देवो यदि तदाकर्णने सामर्षस्तदा तदधिकं तदुपमं वा पौरुषं वितनोतु। कुप्यति कुतः ?

राजोवाच—किं तत्पौरुषम् ? वैतालिकः कथयति—देव ! तस्य बलाह[२]-नाम्नो भूमिपतेर्द्वारि प्रतिरात्रं मन्त्रिण एकं सौवर्णमायतनमुत्पादयन्ति। प्रतिदिनं तच्छेदयित्वा स राजा सुवर्णानि ब्राह्मणेभ्यो दरिद्रेभ्यश्च वितरति। तद्दान-परितुष्टास्ते सर्वे सर्वतस्तस्य कीर्त्तिगाथां गायन्ति।

राजोवाच—वैतालिक ! सत्यमेतत् ? वैतालिक उवाच—राजन् ! अतथ्यं के कथयन्ति ? यदा[३] भवान्नप्रत्येति तदा स्वकीयेन चारपुरुषेण निरूपयतु। राजोवाच—वैतालिक ! यावदेतन्निरूपयामि तावत्त्वमिहैव नगरे तिष्ठ। यदि तथ्यवाग्भविष्यसि तदा रत्नैस्त्वां पूजयिष्यामीत्यभिधाय वैतालिकं बहिः प्राहिणोत्।

राजा चान्तः पुरं गत्वा रहस्यचिन्तयत्—अहो महदाश्चर्यं बलाह-चरित्रम्।[४] अथवा विधातुः प्रपञ्चे किमसम्भाव्यम् ? तत्पश्यामि गत्वा कौतूहलमिदमिति परामृष्य राज्यधुरं[५] सचिवेषु[६] निवेश्याग्नि कोकिल नामानौ वेतालावाहूय तयोः स्कन्धमारुह्य जगाम वडाहस्य राजधानीम्। तत्र च सुभट-वेशधारी राज्ञो वडाहस्य दर्शनं कृत्वाऽब्रवीत्—देव ! असमसमराक्रान्तस्य[७] विक्रमादित्यस्य राज्ञो दौवारिकोऽहम्[८]। भवतः कीर्त्तिमाकर्ण्य भवन्तं सेवितुमागतोऽस्मीत्यभिधाय प्रणनाम।

राजोवाच—रे दौवारिक ! त्वं महतो महीपालस्य दौवारिकोऽसि तन्ममापि द्वारमेवाधितिष्ठ।

ततः प्रभृति विक्रमादित्यो द्वारि तिष्ठन्[९] परमाद्भुतं प्रत्यहमुत्पाद्यमानं सुवर्णायतनं तत्सुवर्णवितरणं चाऽपश्यत्। ततश्चिन्तयामास—कुत एतस्य सुवर्णा-

---

१. 'पुरुषपरीक्षा' में 'एषामंकुरितं यशस्तरु' पाठ है। आगे पल्लवित करने की बात है, इसलिए 'तरु' समीचीन प्रतीत होता है।
२. हस्तलेख में 'वडह' पाठ है।
३. 'पुरुषपरीक्षा' में 'यदि' पाठ है (र० झा, पृ० ७)
४. हस्तलेख में 'वडहचरित्रम्' है।
५. ,, ,, 'राजधुरं' है।
६. ,, ,, 'सचिवे' है।
७. ,, ,, 'असमसमरमाक्रान्तस्य' है।
'पुरुषपरीक्षा' में 'असमसमर-साहसाङ्कस्य' है (र० झा, पृ० ७)।
८. हस्तलेख में 'दौवारिके अहं' है।
९. हस्तलेख में 'द्वारोऽतिष्ठत्' है।

यतनम् ? कुतो मम नास्ति ? पुरुषशक्ये[1] व्यापारे पुरुषेण नोदासितव्यम्। कारणमत्र निरूपयितुं युज्यते। तत्कारणजिज्ञासुरभवत्।

एकदा तु रात्रौ महानिशाभागे सकलेषु पुरजनेषु राजपरिजनेषु प्रसुप्तेषु प्रासादादेकाकिनं निःसरन्तं नगराच्च बहिर्भवन्तं वडाहं ददर्श। दृष्ट्वा च निभृतक्रमेण तेनालक्षितस्तदनुगमनपरायणो बभूव। वडाहस्तु नदीतीरे नृत्यद्वेतालपदास्फाल सातङ्कडाकिनीडमरुडात्कार फेरवीसहस्र फेत्कार सरभसराक्षसीकीडाक्रूरितं नरकपालकडारचिताङ्गार[2] चित्रितं परमभयानकं श्मशानदेशमाससाद।[3] तत्र नद्यां कृतस्नानो[4] भैरवपुरुषैर्नरचर्मरज्जुभिर्बद्धः प्रबलानलसन्तप्ततैलपूर्णे कटाहे निक्षिप्तश्च स तत्र महतीं वेदनामनुभवन् महताकष्टेन प्राणांस्तत्याज। तस्य त्यक्त प्राणस्य तैल सुसिद्धानि मांसानि भगवत्या चामुण्डया प्रत्यक्षीभूय खादितानि। भक्षितमांसा च भगवती परम परिसन्तुष्टा तदस्थीन्यमृतेन सिक्त्वा तं पुनस्तथैव ससर्ज। सृष्टो वडाहः पुनरुत्थाय भगवतीं प्रणमाम। वरं स वव्रे।[5]

वडाह उवाच—भगवति वदान्यतया सम्भावितस्य पुरुषार्थिजन मनोरथ पूरणाशक्तिर्मरणादप्यतिरिच्यते। ततोऽहं मरणमङ्गीकृत्य याचक जनवाञ्छापूरणकामो निजमांसेन भगवतीमर्च्चितवानस्मीति। मातः पूरय मे कामनाम्। देव्युवाच—वडाह![6] प्रभाते तव द्वारि पूर्ववदेव भूयात्सौवर्णमायतनम्। ततो देव्या वरं लब्ध्वा प्रत्यावृत्तो वडाहः कृतार्थो निजमागारमाजगाम।[7]

विक्रमादित्यस्तत्सर्वं दृष्ट्वा चिन्तयामास—सत्यं कथितं वैतालिकेन। दानवीर एवायं[8] वडाहः यतो दानार्थं प्रत्यहं प्राणपरिवर्त्तनेन धनमर्जयति। भगवती करुणावत्यपि कथमेनमेकेनैव प्राणपरित्यागसाहसेन कृतार्थं न कुरुते? भवतु तावदग्रिमा निशा। यदुचितं तत्करिष्यामीति परामृष्य राजद्वारं गत्वा निजाधिकारमलञ्चकार।

---

१. 'पुरुषपरीक्षा' में 'पुरुषवश्ये' पाठ है। (र० झा, पृ० ७; सुमन, पृ० ६)
२. हस्तलेख में 'चितांकार' पाठ है।
३. 'पुरुषपरीक्षा' में 'आजगाम' पाठ है। (र० झा, पृ० ८)
यद्यपि उन्होंने भी 'आससाद' को 'आजगाम' बनाया है।
४. हस्तलेख में 'नद्याकृतस्नानी' पाठ है।
५. 'पुरुषपरीक्षा' में 'वरं च वव्रे' पाठ है (र० झा, पृ० ८)
६. हस्तलेख में 'वडाहस्य' पाठ है।
सम्भव है, 'श्व' के बदले 'स्य' आ गया हो। 'श्व' की उपस्थिति भाषा और अर्थ दोनों ही दृष्टियों से ठीक जँचती है।
७. 'पुरुषपरीक्षा' में 'निजमन्दिरमाजगाम' पाठ है। (र० झा, पृ० ८)
८. हस्तलेख में 'राजा वडाहः' पाठ है।

तदग्रिमनिशायां तु सचिवसामन्तभृत्यपरिवारितो वडाहः यावदेकान्तमपेक्षते तावदसुप्तेष्वेव नगरलोकेषु निःपरिजनो विक्रमादित्यः प्रदोष एव तं प्रदेशं[1] गत्वा तस्यां नद्यां स्नात्वा तस्मिन्नेव सन्तप्ततैलपूर्णे कटाहे झम्पमकरोत्। आर्द्रमांससंयोगात्तप्ततैलकटकटाशब्देन भगवत्या तत्रागत्य तस्य मांसानि खादितानि; तदस्थीन्यमृतेन सिक्तानि। ततो जीवित्वा पुनरुत्थितं विक्रमादित्यं वडाहभ्रमेण यावद्भगवती वरेणानुगृहीतुमिच्छति तावदनेन पुनः कटाहे झम्पः कृतः। पुनश्च भगवत्या तन्मांसानि खादितानि। एवं पुनर्जीवितः पुनः पुनः कृतझम्पः[2] सात्त्विक स्वभावाद्विक्रमादित्योऽयमिति भगवत्या लक्षितो भाषितश्च।

देव्युवाच—रे विक्रमादित्य! त्वय्यहं परितुष्टैवास्मि। ततो लब्धाष्टसिद्धिरपि कथमेतावत् साहसं प्रकुरुषे?

अहं न त्वदीयेन वा तदीयेन मांसेन तृप्यामि। किन्तु पुरुषसाहसं परीक्षमाणा कृत्रिमां बुभुक्षां तृप्तिं च दर्शयामि। सम्प्रति तव साहसपरितुष्टास्मीति। वरं वृणु।

तदनन्तरं विक्रमादित्यः प्रणम्य वरं वव्रे।

विक्रमादित्य उवाच—देवि! भक्तवत्सलासि। जगन्मातः वडाहे कृपालुरहं त्वामाराधितवानस्मि। ततो विना मरणसाहसेनैव प्रत्यहं वडाहस्य द्वारि सौवर्णमायतनं सम्पद्यताम्।[3]

भगवत्युवाच—तथा भवतु। इति वरं लब्ध्वा विक्रमादित्यः स्वराज्यं जगाम। यथार्थवचनं वैतालिकमाहूय रत्नैस्तुरङ्गैर्वासोभिर्वारणैश्च पूजयामास।

वडाहस्तु सुप्तेषु नगरजनेषु निर्गते निशाभागे यदा श्मशान देशं गतस्तदा न किमपि दृष्टवान्। किन्त्वाकाशवाचं शुश्राव—रे वडाह! विक्रमादित्यस्तव खेदमपनीतवान्। इत्यनिर्द्धारितार्थमिव वाचं प्रत्याकलयन् प्रातः किमर्थिभ्यो दास्यामीति चिन्ताव्याकुलितः परावृत्य गृहं गतोऽपि पर्य्यङ्के शयानोऽपि निद्रां न लेभे। तन्द्रा परिवृत[4] एव प्रातरागत्य दौवारिकः प्रबोधितः। सौवर्णमायतनं पूर्ववदेव द्वारि दृष्ट्वा कृतार्थो बभूव।

---

१. 'पुरुषपरीक्षा' मे 'तं देशं' पाठ है।

२. हस्तलेख में 'कृतं झम्प' पाठ है।

३. 'पुरुषपरीक्षा' में 'उत्पद्यताम्' पाठ है। (र० झा, पृ० ६)

४. 'पुरुषपरीक्षा' में (क) 'तत्रापरिवृत्त' (र० झा, पृ० १०)

(ख) 'तत्रजाग्रदेव पुनः प्रातरागत्य' (सुमन, पृ० ६)

आकाशसरस्वत्याः प्रकरण बलेनार्थं ज्ञातवान्—विक्रमादित्यस्य प्रसादान्मम पुनर्मरणायासेन विना[1] सिद्धिरियं जातेति। निर्द्धारितमप्यर्थं तस्य संसदि[2] वैतालिकः समागत्य पुनरुक्तं चकार। तथाहि—

पुंसां प्रथममुल्लेख्यो राजा विक्रमकेशरी।
कल्पते कल्पवल्लीव दानवीरोऽपि यद्दया॥

इति कवि विद्यापतिविरचिते भूपरिक्रमणग्रन्थे दानवीरकथा समाप्ता।

---

१. 'पुरुषपरीक्षा' में 'पुनर्मरणायास निरपेक्षा' पाठ है। (र० झा, पृ० १०)
२. हस्तलेख में 'सदि' या 'हृदि' पाठ है।

द्वितीय प्रस्थान

ब्रह्मावर्त्त विवरणम्

दानवीरकथां श्रुत्वा बलदेवोऽतिहर्ष गः ।
पुनः पप्रच्छ सुमुनिं कथामन्यां वदाऽथ च ॥
हारभूमिं परित्यज्य सप्तयोजन[1] व्यत्यये ।
ब्रह्मावर्त्तं चागतवान् चान्तर्वेदस्य मध्यतः ॥
त्रिकालज्ञमुनिवरं सङ्गे नीत्वा हलायुधः ।
कलिसन्ध्याभाविकथा शुश्रूषा संयुतो बली ॥
विस्तीर्णापुरी मध्ये च कल्याणीनदी सन्निधौ ।
पञ्चदिनं तीर्थयात्रां चकार ह मुदान्वितः ॥
परिहारकाननं च संयतोहि महाहली ।
प्रदक्षिणत्रयं (कृत्वा)[2] कालेश्वरगुहान्तरे ॥
नालिकानदीतीरे च कालेश्वरं प्रयत्नतः ।
सम्पूज्य बलदेवो हि वाल्मीकाश्रमं जगामह ॥
(अ)हल्याकूपो[3] यत्रैव गभीरे[4] पिलुकानने ।
सीताप्रसवस्थानं च सौरिं लोके चमत्कृताम् ॥
कल्याणीसङ्गमे स्नात्वा नानादानं विधाय च ।
वाल्मीक डिच भूपाल (जगाम ह महाबली) ॥[5]

---

१. हस्तलेख में 'योजनं' पाठ है ।
२. भूतकालिक क्रियापद रिक्त है ।
३. हस्तलेख में 'हल्याकूपं' याठ है ।
४. " " 'गंभीरं' पाठ है ।
५. कोष्ठक में प्रयुक्त शब्द डॉ० मुनीश्वर झासम्पादित ग्रन्थ में वाक्य-पूरणार्थ व्यवहृत हुए हैं ।

कुशलवयोधनस्थानं दृष्ट्वा हर्षमुपागतः ।[१]
पञ्चक्रोशात्मिकां भूमिं महापातकनाशिनीम् ॥[२]
कुलपिपुरं च तत्रैव कल्याणीतटिनीतटे ।
राजपुत्रा हि बहवो यत्र सन्ति सहस्रशः ॥
विलोक्य कामपालोहि त्रिकालज्ञ पुरस्कृतः ।
सौरिस्थाने पुनर्गत्वा चोवास पञ्चमीं निशाम् ॥
कल्याणपुरस्य भूपालो ब्रह्मदत्तो महीपतिः ।
बलदेव तीर्थयात्रां श्रुत्वा पदान्तिकं पुरा ।
वन्दनां कृत्वा सादरेण बलदेवं महीपतिः ॥
द्वादशयोजन परिमितो ब्रह्मावर्त्तो निरूपितः ।
ब्रह्मवर्त्तद्वयं राजन् प्रसङ्गात् हि निरूप्यते ॥
आमोदकाननं यत्र तथाच काम काननम् ।
स्वायम्भुवमनोः स्थानं सरस्वती कुण्डञ्च तत्र वै ॥
वेणभूपस्य वासोहि चाधर्म्मिणां शिरोमणेः ।
विचारो यस्याधिकारे च नैव जातो महीपते ॥
जातिसंकरसृष्टिश्च पुरा येन निरूपिता ।
अन्यायांश्च विलोक्य मुनयो ददुः शापाञ्च वेणभूमृते ॥
यस्य पुण्यांशेन जातो राजा हि पृथु संज्ञकः ।
पापांशेन म्लेच्छाश्च जाता हि मुनि शापतः ॥
वासार्थं[३] गतवन्तो हि चोपद्वीपान् हि सागरे ।
हापानं सिंहलद्वीपे गतवान् हि मुनिर्भयात् ॥

---

१. उपर्युक्त दोनों पंक्तियों की पुनरावृत्ति हस्तलेख में हुई है।

२. डॉ० मुनीश्वर झा ने 'पंचक्रोशात्मिका भूमिः महापातकनाशिनी' लिखा है। किन्तु, अग्रिम पद में प्रयुक्त 'विलोक्य' से सम्बद्ध रहने के कारण 'भूमिं…नाशिनीम्' उपयुक्त प्रतीत होता है। मूल पाठ में वैसा है भी।

३. हस्तलेख में 'वासार्थ' पाठ है।

लघुब्रह्मावर्त्तदेशोऽयं पञ्चपुरयुतो भुवि ।
कर्णपुरं कल्याणपुरं चतुर्वेदपुरं तथा ॥
खर्जरीपुरं लोलपुरं यत्र दीर्घश्रवा नृपः ।
पञ्चशतग्रामा यत्रैव सस्याद्याचैव चोर्वरा: ॥[1]
ब्रह्मावर्त्तस्य वृत्तान्तं बलदेवे निवेद्य च ।
गतवान् कल्याणपुरं ब्रह्मदत्तो महीपतिः ॥
अथान्तरे रात्रिभागे सौरिस्थाने महामुनिः ।
दयावीरकथां रम्यां हलिने कथितवान् पुरा ॥

---

१. हस्तलेख में 'चोर्वर' शब्द प्रयुक्त हुआ है ।

दयावीरकथा

दयालुः पुरुषः श्रेष्ठः सर्वजन्तूपकारकः ।
तस्य कीर्त्तनमात्रेण कल्याणमुपपद्यते ।।

अस्ति कालिन्दीतीरे योगिनीपुरं नाम नगरम् । तत्र अलावदीनो[1] नाम यवनराजो[2] बभूव । सचैकदा केनापि निमित्तेन महिमासाहि नाम्ने सेनान्ये चुकोप । स च यवनस्वामिनं प्रकुपितं प्राण ग्राहकं च ज्ञात्वा चिन्तयामास । सामर्षो राजा विश्वसनीयो न भवति । तथाहि—

राजानः पिशुनाः सर्पा विश्वस्तव्या न कुत्रचित् ।
अतर्कितं विनिघ्नन्ति दर्शयन्तोऽपि सम्भ्रमम् ।।

तदिदानीं यावदनिरुद्धोस्मि तावदेवेतः क्वापि गत्वा निजप्राणरक्षां करोमीति परामृष्य सपरिवारः पलायितः । पलायमानोऽप्यचिन्तयत् यत्स-परिवारस्य दूर गमनमशक्यम् । परिवारं परित्यज्य पालायनमपि नोचितम् । यतः—

जीवितार्थं[3] कुलं त्यक्त्वा योऽतिदूरतरं[4] व्रजेत् ।
लोकान्तरगतस्येव किं तस्य जीविते न वा ।।

तदिहैव दयावीरं हम्मीरदेवं[5] समाश्रित्य तिष्ठामीति परामृष्य स यवनो हम्मीरदेवमुपगम्याह । महिमासाहिरुवाच—देव ! विनापराधं हन्तुमुद्यतस्य स्वामिनस्त्रासेनाहं तव शरणमागतोऽस्मि । यदि मां रक्षितुं शक्नोषि तदा विश्वासं देहि । नोचेदितोऽन्यत्र गच्छामि ।

राजोवाच—यवन ! मम शरणागतं मयि जीवति यमोऽपि त्वां पराभवितुं न शक्नोति, किं पुनर्यवनराजः तदभयं तिष्ठ ।

ततस्तस्य राज्ञो वचनेन स यवनसचिवस्तस्मिन्रणस्तम्भनाग्नि दुर्गे निःशङ्कमुवास ।

---

१. 'पुरुषपरीक्षा' में 'अल्लावदीनो' पाठ है । (र० झा, पृ० १०)
२. हस्तलेख में 'यवनराज' पाठ है ।
३. 'पुरुषपरीक्षा' में 'जीवनार्थं' पाठ है । (र० झा, पृ०, ११)
४. डाँ० मुनीश्वर झा ने 'योऽतिदूरं' पाठ ग्रहण किया है । (पृ० १२)
५. 'पुरुषपरीक्षा' में 'हम्बीरदेवं' पाठ है (र० झा, पृ० ११)

क्रमेण यवनराजस्तत्रावस्थितं तं विदित्वा परमसामर्षः करितुरगपदाति पदाघातैर्धरित्रीं चालयन् कोलाहलैर्दिशो[१] मुखरयन् कियद्भिरपि[२] वासरैर्लङ्घित-वर्त्मा दुर्गद्वारमागत्य शरासारैः प्रलयघनवृष्टिं दर्शयामास। हम्मीरदेवोऽपि परिखागम्भीरचतुर्मेखलं कुन्तदन्तुरितप्राकारशिखरं[३] पताकाप्रबोधित द्वारश्रियं दुर्गं कृत्वा। ज्याघातकर्णकटुभिर्बाणैर्गगनमण्डलमन्धं कृतवान्।

प्रथमयुद्धानन्तरं यवनराजेन हम्मीरदेवं प्रति दूतः प्रहितः।

दूत उवाच—राजन् हम्मीर! श्रीमान् यवनाधिराजस्त्वामादिशति यन्ममापथ्यकारणं[४] महिमासाहिं परित्यज्य देहि। यद्येनं न दास्यसि तदा श्वस्तने[५] प्रभाते तव दुर्गं तुरगखुराघातैश्चूर्णविशेषं कृत्वा महिमासाहिना सह त्वामन्तक-पुरं नेष्यामि।

हम्मीरदेव उवाच—रे दूत! त्वमवध्योऽसि। तवाहं किं करवाणि? अस्योत्तरं तव स्वामिने खड्गधाराभिरेव दास्यामि न वचोभिः। मम शरणागतं यमोऽपि विपक्षदृष्ट्या वीक्षितुं न शक्नोति किं पुनर्यवनराजः?

ततो निर्भर्त्सिते दूते गते सति यवनराजः कुपित्वा[६] युद्ध समुद्धुरो बभूव। एवमुभयोरपि बलयोर्युद्धे प्रवर्त्तमाने त्रीणि वर्षाणि यावत् प्रत्यहं सम्मुखाः पराङ्मुखाः प्रहारिणः पराभूता हन्तारो हताश्च परस्परमुभयबलयोधाः बभूवुः। पश्चादर्द्धावशिष्टसुभटे यवन सैन्ये दुर्गे ग्रहीतुमशक्ये यवनराजः परावृत्य निजनगरगमनाकांक्षी बभूव। तञ्च भग्नोद्यमं दृष्ट्वा रायमल्ल-रामपाल नामानौ हम्मीरदेवस्य द्वौ सचिवौ दुष्टौ यवनराजमागत्य मिलितौ।

तावूचतुः—यवनराज! भवता क्वापि न गन्तव्यम्। दुर्गे दुर्भिक्षमा-पतितम्। आवां दुर्गस्य मर्मज्ञौ। श्वः परश्वोवा दुर्गं ग्राहयिष्यावः। ततस्तौ दुष्ट सचिवौ पुरस्कृत्य यवनराजेन[७] दुर्गद्वाराण्यवरुद्धानि।

तथा सङ्कटं दृष्ट्वा हम्मीरदेवः स्वसैनिकान् प्रत्युवाच—रे रे जालमदेव-प्रभृतयो[८] योधाराः। परिमित बलोऽप्यहं शरणागतकरुणया प्रवृद्ध बलेनापि यवनराजेन समं योत्स्यामि। एतच्च नीतिविदामसम्मतं कर्म। ततो यूयं सर्वे दुर्गाद्बहिःस्थानान्तरं गच्छत। त ऊचुः—देव! भवान् निरपराधो[९] राजा यवनस्य

१. 'काहलकोलाहलर्दिशो (क) पुरुषपरीक्षा (र० झा, पृ० ११)
(ख) डाँ० मुनीश्वर झा (पृ० १३)
२. 'पुरुषपरीक्षा' में 'अपि' नहीं, केवल 'कियद्भिः' है। (र० झा, पृ० ११)
३. हस्तलेख में 'शिखिरं' पाठ है।
४. 'पुरुषपरीक्षा' में 'कारिणं' पाठ है। (र० झा, पृ० १२)
५. हस्तलेख में 'स्वस्त सेन' पाठ है।
६. 'पुरुषपरीक्षा' में 'कुपितो' पाठ है। (र० झा, पृ० १२)
७. हस्तलेख में 'यवनराज्येन' पाठ है।
८. 'पुरुषपरीक्षा' में 'जाजदेव' पाठ है। (र० झा, पृ० १२)
९. 'पुरुषपरीक्षा' में 'भवान्निरपरद्धो' पाठ है। (र० झा, पृ० १२)

करुणया सङ्ग्रामे मरणमङ्गीकुरुते। वयं भवतो जीव्यभुजः कथमिदानीं भवन्तं स्वामिनं परित्यज्य (का) पुरुषपदवीमनुसरिष्यामः ?[१] किञ्च श्वस्तने प्रभाते देवस्य शत्रुं हत्वा प्रभोर्मनोरथं साधयिष्यामः। यवनस्त्वयं वराकः स्थानान्तरं प्रहीयताम्।[२] तेन रक्षणीय रक्षा सम्भवति। तेनरक्षानिमित्तक[३] एवायमारम्भो यातः। यवन उवाच—देव ! किमर्थं ममैकस्य विदेशिनो रक्षार्थं सपुत्रकलत्रं स्वकीयराज्यं विनाशयिष्यसि ? ततो मां परित्यज्य देहि। राजोवाच यवन ! मैवं[४] ब्रूहि। यतः—

भौतिकेन शरीरेण नश्वरेण चिरस्थितम्।[५]
लप्स्यमानं यशः को वा परिहर्त्तुं समीहते ॥

किं च यदि मन्यसे तदा निर्भयस्थानं त्वां प्रापयामि। यवन उवाच—राजन् ! मैवं[६] ब्रूहि। सर्वप्रथमं[७] मयैव विपक्षशिरसि खड्गप्रहारः कर्त्तव्यः। स्त्रियः परं बहिः क्रियन्ताम्। स्त्रिय ऊचुः—कथं नः स्वामिनः शरणागत-रक्षार्थं सङ्ग्राममङ्गीकृत्य स्वर्गयात्रामहोत्सवे प्रवर्त्तन्ते। कथं तैर्विना भूतले स्थास्यामः। यतः—

मा जीवन्तु स्त्रियोऽनाथा वृक्षेणेव विनालताः।
साध्वीनां जगति प्राणाः पति प्राणानुगामिनः ॥

ततो वयमपि वीरस्त्रीजनोचितं हुताशनप्रवेशमाचरिष्यामः। एवम्—

भटैरङ्गीकृतं युद्धं स्त्रीभिरिष्टो हुताशनः।
राज्ञो हम्मीरदेवस्य परार्थं जीवमुज्झतः ॥

ततः प्रभाते युद्धे प्रवर्त्तमाने हम्मीरदेवः सत्वरतुरगारूढो निजसुभटसाथ-सहितः पराक्रमं कुर्वाणो दुर्गान्निःसृत्य खड्गधाराप्रहारैर्विपक्षबलवाजिनः पातयन् कुञ्जरान् घातयन्, (पदातीन् निर्यातयन्)[८], भयं प्रवर्त्तयन्, कबन्धान् नर्त्तयन्,

---

१. हस्तलेख में पुरुष से पहले 'का' नहीं है।
२. " " 'प्रहीयुता' पाठ है।
३. 'तेन रक्षानिमित्तक' (डॉ० मुनीश्वर झा, भू० प०, पृ० ४४)
४. हस्तलेख में 'मा मैवं' पाठ है।
५. 'पुरुषपरीक्षा' में 'चिरस्थिरम्' पाठ है। (र० झा, पृ० ४३)
६. हस्तलेख में 'मा मैवं' पाठ है।
७. 'पुरुषपरीक्षा' में 'सर्वथा प्रथमं' पाठ है। (र० झा, पृ० ४३)
८. 'पुरुषपरीक्षा' में ये दोनों शब्द सम्मिलित हैं और उपयुक्त भी (र० झा, पृ० ४४)

रुधिरधारा प्रवाहेन मेदिनीमलङ्कृत्य शरशल्लित सर्वाङ्गस्तुरगपृष्ठे त्यक्त-प्राणः सम्मुखः सङ्ग्रामभूमौ निपपात सूर्यमण्डलभेदी च बभूव । तथाहि—

ते प्रासादा निरुपमगुणास्ताः प्रसन्नास्तरुण्यो[१]
राज्यं तच्च द्रविण बहुलं[२] ते द्विपास्ते तुरङ्गाः ।
त्यक्तुं यन्न प्रभवति जनः किञ्चिदेकं परार्थं
सर्वं त्यक्त्वा समिति पतितो हन्त ! हम्मीरदेवः ॥

गद्यपद्येन विशदं कृत्वा विद्यापतिः कविः ।
श्रावयामास राज्ञे च देवसिंहाय भूभृते ॥

इति विद्यापतिकविविरचिते भूपरिक्रमणे ब्रह्मावर्त्ते दयावीरकथा सामाप्ता ।

२. हस्तलेख में 'तेरुण्यो' पाठ है ।
३. हस्तलेख में 'दवेण वहलं' पाठ है

तृतीय प्रस्थान

यज्ञभूमिविवरणम्

ततः पुरा कामपालो ब्रह्मावर्त्तं विहाय च ।
सङ्गे नीत्वा त्रिकालज्ञं जगाम यज्ञभूमिकम् ॥
कर्णपुरं परित्यज्य हस्तिकर्णपुरं (तथा) ।
द्विजभूमिं विहायैव प्रयागं प्राप्तवान् हली ॥
तीर्थराजमहाक्षेत्रं नदीत्रयसमन्वितम् ।
सितासितारुणा राजन् वेणीरूपेण संस्थिता ॥
आबालचन्द्रादारभ्य[1] प्रतिष्ठानपुरावधि ।
नीलकण्ठपुरं यावत् पञ्चयोजनसम्मतम् ॥
तन्मध्ये पञ्चक्रोशश्च कामनासिद्धिदः कलौ ।
सोमेश्वरं दशाश्वमेधं च शूलेशं च महीपते ॥
सर्वत्र बलदेवश्च यात्रां चक्रे नियमनात्[2] ।
चर्तुदिनं प्रयागे च त्रिकालज्ञेन सहाश्रितः ॥
बलदेव ह्युवासात्र[3] नानाकौतुकसंयुतः ।
भरद्वाजाश्रमे चैव दिवसद्वयमुवास ह ॥
सहस्त्रब्राह्मणानाञ्च चकार भोजनं हली ।
महाप्रयागप्रदक्षिणं कृत्वा च बहुमानतः ॥[4]

---

१. हस्तलेख में 'आबालचन्द्र समारभ्य' पाठ है ।
२. ,, ,, 'नियामनात्' पाठ है ।
३. ,, ,, 'ह्यु्वासश्च' पाठ है ।
४. ,, ,, 'प्रदक्षिणं चैव कृत्वा च बहुयत्नतः' पाठ है ।

प्रयागस्योत्तरे भागे योजनैकव्यतिक्रमे ।
मलकाख्यग्रामो हि बलदेवेन दर्शितः ॥
आम्लकीनां[1] काननानि यत्र रम्यानि सन्ति हि ।
मधुग्रामे कामपालो भूरि मधु पीतवान् पुरा ॥
निकटे यस्य ग्रामस्य गङ्गा वहति वेगतः ।
मुकुन्दब्रह्मचारी च कलिसायं महीपतिः ॥
मधुग्रामस्य निकटे फतेपुरग्राममध्यतः ।
रारकविपिने यस्य सिद्धिकुण्डे ह्युवास ह ॥
स एव ब्रह्मचारी च शूलकण्ठेश्वराग्रतः ।
कामनासिधारायाञ्च[2] प्राणत्यागं चकार ह ॥
अथान्तरे कामपालो चन्द्रपुरं जगाम ह ।
त्रिकालज्ञेन मुनिना समञ्च पश्चिमेंऽशके ॥
यत्र पूर्वे राजयक्ष्मारोगपीडाभयात् शशी ।
तपस्तेपे महीपाल ततश्चन्द्रपुरं श्रुतम् ॥[3]
चन्द्रपुरस्य निकटे मयदैत्येन निर्मितः ।[4]
मायग्रामो हि भूपाल यत्र दुर्गं पुरा स्थितम् ॥
येनैव मयदैत्येन हस्तिनापुरमध्यतः ।
महापाषाणं ह्यर्पितवान् राज्ञे युधिष्ठिराय ॥
मायग्रामस्य वृत्तान्तः सरित्सागरपुस्तके ।
द्रष्टव्यः देवसिंहस्यापि[5] जिज्ञासा चाधिका यदि ॥

---

१. हस्तलेख में 'आमलंकीनां' पाठ है ।
२. ,, ,, 'छन्दानुसार 'च' अप्राप्त है ।
३. ,, ,, 'तताश्चन्द्रपुरं श्रुत' पाठ है ।
४. ,, ,, 'निकटे माय ग्राम मयदैत्येन निर्मितः' पाठ है ।
५. ,, ,, 'द्रष्टव्यं देवसिंहापि' पाठ है ।

प्रयागदक्षिणे भागे सार्द्धयोजनव्यत्यये ।
करेलाख्यमहाग्रामो वर्त्तते[१] चातिशोभनः ॥
चकोरनयनी[२] ग्रामो तीर्थराजस्य दक्षिणे ।
चकोरचकोरी[३] पक्षिप्रख्यानं यत्र चाभवत्[४] ॥
अरेलग्रामः[५] सेराजग्रामोऽपि यत्र दुर्गं च मृण्मयम् ।
महाप्रयाग(प्र)दक्षिणं कृत्वा भरद्वाजाश्रमं गतः ॥
कुसुमकरालिराजधानीनिःसृतो वाग्मी भूभुजः ।
जन्मेजयस्य स्वसुर्वंश्यो बलराजमुपागतः ॥
अथ रात्रौ त्रिकालज्ञः युद्धवीर कथा शुभा ।
अवादीत् बलदेवाय पुराणक्रमशः पुरा ॥

---

१. हस्तलेख में 'वर्तत' पाठ है ।
२. ,, ,, 'चकोरनयनी' पाठ है ।
३. ,, ,, 'चकोरचकरी' पाठ है ।
४. ,, ,, 'यत्रचाद्भुतं' पाठ है ।
५. ,, ,, 'अरेलग्रामो' पाठ है

अथ युद्धवीरकथा

तद्यथा–

कातरः शूरतां याति क्रियावानलसो भवेत् ।
युद्धवीर कथां श्रुत्वा जयमाप्नोति मानवः ।।

आसीन्मिथिलायां कर्णाटकुलसम्भवस्य नान्यदेवनाम्नो राज्ञः पुत्रो मल्लदेवनामधेयः कुमारः । स च सिंह इव स्वभावात् पराक्रमरसिकश्चिन्तयामास—यदहं युवराजोऽपि पितुरुपार्जिते राज्ये सुखमनुभवामीति न मम पौरुषम् । यतः—

पराश्रयेण जीवन्ति कातराः शिशवः स्त्रियः ।
सिंहाः सत्पुरुषाश्चैव निजदर्पोपजीविनः ।।

न वा निजभुजोपार्जितेन वित्तेन विना[1] पितृभक्तिरपि सम्भवति । युदुक्तम्—

अर्जितं भुज्यते यस्य यस्य यस्य चाराध्यते[2] यशः ।
पितुर्बहुसुतस्यापि तेन पुत्रेण[3] पुत्रिता ।।

ततः क्वापि गत्वा भुजदर्प्पेण[4] पौरुषमार्ज्जयामीति परामृष्य स कुमारः कान्यकुब्जं नाम जनपदं जगाम । तत्र च जयचन्द्रनाम्नो राज्ञः काशीश्वरस्य सुभट परिपाट्या संदर्शनं चकार । स राजा तं सत्कृत्य प्रियसहचरमकरोत् । कुमारस्तु तस्य राज्ञः सेवायां वर्त्तमानः क्रमक्रमेणाधिकसम्मान[5]पात्रमेकदा समादरे वैषम्य[6] मन्वभूत् । तथाहि—

आदरो दुर्लभो राज्ञां वस्तुन्यल्प गुणेऽपि च ।
प्रगुणे च सुखप्राप्ते भवेन्नूनमनादरः ।।

---

१. हस्तलेख में 'विनापि' पाठ है ।
२. (क) ,, 'चाराधते' पाठ है ।
(ख) 'पुरुषपरीक्षा' में 'चाकर्ण्यते' पाठ है । (र० झा, पृ० २५)
३. हस्तलेख में 'पुत्रेण' के स्थान पर 'सत्रिण' पाठ है ।
४. 'पुरुषपरीक्षा' में 'निजभुजदर्पेण' पाठ है । (र० झा, पृ० २५)
५. हस्तलेख में 'सन्मान' पाठ है ।
६. ,, 'वैशम्य' पाठ है ।

ततः स कुमारश्चिन्तयामास—

धनं तृष्णावतः प्राणाः वह्नेः प्राणास्तथेन्धनम् ।
कामुकस्य स्त्रियः प्राणा मानः प्राणा मनस्विनः ।।

ततो राजनमब्रवीत्—देव![1] भवतः प्रभुधर्मं श्रुत्वाऽहमिहागतोऽस्मि । साम्प्रतमन्यत्र प्रयास्यामि[2] ।

राजोवाच—कुमार! किं तवोद्वेगकारणं येनान्यत्र यास्यसि ?

मल्लदेव उवाच—देव! भवतः समादरः क्रमक्रमेणापि शिथिलो भवितेत्याशङ्क्य साम्प्रतमितोऽन्यत्र गन्तुमिच्छामि ।

राजोवाच—कुतोऽवगतमिदम् ?

मल्लदेव उवाच—यतः शौर्य्यमूलको[3] मादृशां समादरो भवति। शौर्य्यं[4] तु वाग्युद्धेन केवलं ख्यापयितुमशक्यम् ।[5] अस्त्रयुद्धं भवतो राज्ये न दृश्यते ।[6]

राजोवाच—आसमुद्रकरग्राहिणो मम युद्ध परिपन्थी[7] कोऽपि नास्ति । तत्केन समं युद्धं भविष्यति ?

कुमार उवाच—देव! राज्यफलं राज्ञो विजयसुखम् । विना युद्धेन कुतो विजयः ? कुतो वा तत्सुखम् ? यदि देवो मन्यते तदाऽहमितो गच्छामि । यस्य राज्यमहं गमिष्यामि स एव देवस्य युद्ध परिपन्थी[8] भविता ।

राजा सक्रोधमाह—रे कुमार! कस्त्वं वराकः ? केन दर्पेणैवं भाषसे ? गच्छ तावद्यत्र गच्छसि । यत्र त्वं यास्यसि तत्रैवाऽहं प्रयाणं करिष्यामि ।

कुमार उवाच—अयमहं गच्छामि ।

ततः कुमारः चिक्कोर नाम्नो नृपस्य राज्यं जगाम । तदग्रे तं तत्र गतं श्रुत्वा काशीश्वरश्चतुरङ्गबलसहितः चिक्कोरं प्रति ययौ । कियतापि कालेतु तं सन्निधानमागतं श्रुत्वा चिक्कोरःस्वमन्त्रिभिः समं मन्त्रयामास यत्काशीश्वरो

---

१. हस्तलेख में 'देवात्र' पाठ है ।
२. 'पुरुषपरीक्षा' में 'यास्यामि' पाठ है ।
३. हस्तलेख में 'सौर्य्यमूलको' पाठ है ।
४. ,, में 'सौर्य्य' पाठ है ।
५. ,, में 'आपतित्तु' न शक्यं' पाठ है ।
६. (क) ,, में 'लक्षते एव न' पाठ है ।
(ख) 'पुरुषपरीक्षा' में 'दृश्य एव न' पाठ है । (र० झा, पृ० ४६।
७. हस्तलेख में 'परिपंथो' पाठ है ।
८. ,, में 'परिपन्थो' पाठ है ।

महाराजः[1] कोपाविष्टो मामुद्दिश्य समायाति तदिदानीं किं विधातुमुचितं भवति ।

मन्त्रिण ऊचुः—देव ! भवतः[2] परिमितबलस्य तेन महाबलेन समं युद्धं नोचितं न वा तस्य महेश्वरस्य सन्धानक्षमं भवतो धनं विद्यते । तदिदानीं दुर्गाश्रयणमुचितम् । ततः पलायितुमुद्यतं चिक्कोरराजं दृष्ट्वा मल्लदेवोऽब्रवीत्—राजन् ! किमिति पलायितव्यं भवता ? भवन्तमुद्दिश्य काशीश्वरो न कदाप्यागतो नवाऽग्रेऽप्यागमिष्यति । यदि भवान् प्रत्येति तदा कथयामि तस्यागमननिमित्तम् । भवता न भेतव्यम् ।

चिक्कोर[3] उवाच—किं तन्निमित्तम् ?

मल्लदेवः पूर्वकथां कथयामास ।

चिक्कोर[3] उवाच—तर्हि किमुचितम् ?

मल्लदेव उवाच—स चेत् केवलं मामेवोद्दिश्य समायाति तदा भवता न पलायितव्यम् । किञ्च मयैकेन समं बहूनां तत्सुभटानां सङ्ग्रामकौतूहलं द्रष्टव्यम् ।

चिक्कोर[3] उवाच—कुमार ! तेन महाराजेनानन्तबलेन सममेकाकिनस्तव न समुचितं युद्धम्[4] । नीतिविरुद्धमेतत्[5] ।

कुमार उवाच—शूराः[6] कर्मणि[7] परामर्शं न सहन्ते ।

चिक्कोर[3] उवाच—तर्हि[8] तर्ह्यविमृश्यकारिणां विपदन्तः प्रारम्भः ।

कुमारो[9] ब्रूते—अलममुना[10] विवादेन ।

यत्करिष्ये स्वयं कर्म मोक्ष्ये तस्य स्वयं फलम् ।
स्वापराधविपन्नानां विपत्तिः केन शोच्यते ।।

चिक्कोर[3] उवाच—

युक्तं तुल्यबले युद्धं यत्रास्ति जयसंशयः ।
प्रबलेऽरिबले वह्नौ के पतन्ति पतङ्गवत् ।।

---

१. हस्तलेख में 'महार .' पाठ है ।
२. हस्तलेख में 'भवता' पाठ है ।
३. ,, में 'वक्रोल' पाठ है ।
४. तथैव ।
हस्तलेख में 'युद्धमिति' पाठ है ।
५. ,, में पूर्वपद 'नीति' लुप्त है ।
६. ,, में 'सूर' पाठ है ।
७. ,, में 'कर्माणि' पाठ है ।
८. ,, में 'तर्हि विमृष्यकारिणा' पाठ है
९. ,, में 'कुमार' पाठ है ।
१०. ,, में 'अलमुमुरना' पाठ है ।

कुमार उवाच—

यशश्चिचीषया येन[1] मृत्युरङ्गीकृतो रणे ।
तस्यापरं भयस्थानं किं रिपौ प्रबलादपि ॥

किञ्च—

यशः कामनया पुंसां रणे मरणमिच्छताम् ।
परिपन्थिमहत्त्वेन महत्त्वं यशसो भवेत् ॥

अपि च—

प्राणत्राणाय सङ्ग्रामात् पलायन्तेऽपि ये नराः ।
मृत्युरावश्यकस्तेषां कार्पण्यमतिरिच्यते ॥[2]

चिक्कोर[3] उवाच—कुमार ! भवान् महावीरः, काशीश्वरो महाराजस्ततो युवयोः सङ्ग्राम[4] संघर्षोऽस्मदादिभिः श्रोतुमपि न शक्यते किं पुनर्द्रष्टुम् ।

कुमार उवाच—यदि भवतो युद्धस्य दर्शनमप्यनभिमतं तदा भवान् गच्छतु । क्वापि यमपुरुषाऽनिरीक्ष्यमाणं स्थानं गत्वा भवत्वमरः । मया च योद्धव्यमेव । परं ततो मह्यं हस्तिनमेकं दत्वा गच्छतु भवान् । मया तु शून्यस्यापि भवतो नगरस्यावेक्षा कर्त्तव्या । चिक्कोरः कुमारस्य वचनेन तथा कृत्वा पलायितः ।

तदग्रिमप्रभाते भेरीभाङ्कारैर्गगनाभोगं पूरयन् कूर्ममर्मस्पृशा तुरगखुरप्रहारेण धरणिमण्डलं चालयन् महाराजो जयचन्द्रस्तन्नगरसन्निधानमाजगाम । मल्लदेवस्तमागतं ज्ञात्वा कृतसन्नाहः परिगृहीतास्त्रो गजारूढः पुरो गत्वा राजानं ददर्श ॥

राजोवाच—कस्त्वं रे कुञ्जरारूढ ! सन्धनार्थी चिक्कोरस्य दूतो युद्धार्थी मल्लदेवोऽसि वा ?

मल्लदेव उवाच—राजन् ! नाऽहं दूतो न वा सन्धनार्थी । किन्तु तव प्रतिमल्लो युद्धार्थी मल्लदेवोऽस्मि । राजा विहस्याह—भद्र ! मम प्रतिमल्लता सिद्धैव । त्वमिदानीं समागत्यानुसर माम् ।

मल्लदेव उवाच—त्वमेव किन्न मामनुसरसि ? सम्प्रति त्वं तुरगारूढोऽसि, अहं गजारूढोऽस्मि । त्वमप्यस्त्राणि धारयसि, अहमप्यस्त्राणि धारयामि ।

---

१. हस्तलेख में 'यशश्वी चोषया' पाठ है ।
१. " में 'कार्पण्यमितिरिच्यते' पाठ है ।
३. " में 'वाक्कोल' पाठ है ।
४. " में 'संग्राम संहर्षो' पाठ है ।

तदिदानीं प्रहारसमयें कुतो वचनवैचित्र्याणामवकाशः? राजा साश्चर्यं सैनिकान् प्रत्याह—रे सैनिकाः! जीवितं मल्लदेवं धृत्वा मे दत्त।[१]

मल्लदेवः सर्वान् प्रत्याह—

दिक्पालाः कृतसाक्षिणश्च मुनयः सिद्धाः सुराः खेचराः
सर्वे पश्यत कौतुकं नृपिशितैं रक्षोगणास्तृप्यत।
मोदं चाप्सरसः प्रयात सहसा वीरानुरागोत्सुका
एकः साहसमातनोति बहुभिः श्रीमल्लदेवो रणे॥

ततो निरोद्धुकामान् परितो विपक्ष सुभटान् मल्लदेवो नाराचचक्रै-र्निजघान। तेन च निहतान् निजप्रियसुभटान् भूमौ पतितान् दृष्ट्वा जयचन्द्रः सेनामादिदेश—रे रे वीरपुरुषाः! यद्येन मुमूर्षुमवरोद्धुं न शक्नुथ, तदा शरासारैः स्नपयत। ततस्तां प्रभोराज्ञामासाद्य सुभटास्तं मल्लदेवं युगपदेव ज्यापातनिर्घोषदारुणैः शरासारैरभ्यषिञ्चन्। शरशल्लितश्चासौ कुञ्जराद् भूमौ पपात।

तत्समये[२] कवेः कस्यापि श्लोकः—

अशीतिवर्षदेशीयश्चिक्कोरः प्र पलायितः।
षोडशाब्दस्तु कार्णाटः सम्मुखः पतितो रणे॥

तञ्च प्रचुरनाराचभिन्नशरीरं सङ्ग्रामभूमौ पतितं दृष्ट्वा राजोवाच—हे सात्त्विकमूर्धन्य! कार्णाटकुलप्रतिष्ठाबीजाङ्कुर! जीविष्यसि?

मल्लदेव उवाच—कच्चिदावयोः केन जितं युद्धम्?

राजोवाच—भवता जितम्।

(मल्लदेव उवाच)—कथमिदं निर्द्धारणीयम्!

राजोवाच—

अस्माभिः कृतसङ्ग्रामो यदेको बहुभिर्हतः।
जिगीषति तथाप्यस्मान् कथं न विजयी भवान्॥

---

१. हस्तलेख में 'मेदत' पाठ है।
२. (क) " में 'तत्समय' पाठ है।
(ख) 'पुरुषपरीक्षा' में उपर्युक्त पाठ है।
(ग) वास्तव में 'तत्समय पूर्वकवेः' अभीष्ट है।

ततस्तेन राज्ञः प्रशंसावचनेन पुलकितबाहुमूलो मल्लदेवोऽब्रवीत्—देव ! जीविष्यामीति ।

तदनन्तरं तच्छौर्य्य[1] परितुष्टेन जयचन्द्रेण राज्ञा स कुमारः शरानुद्धृत्य स्वस्थानं नीतः पुत्रप्रेम्णा परिपाल्य क्षतेषु निर्वाणेषु प्रतिपूज्य प्रतिनिधीकृतश्च ।

तथाहि—

तच्छौर्यं[1] मल्लदेवस्य सविवेकश्च भूपतेः ।
भूते भाविनि वा काले न जातो न जनिष्यते ।।

इदानीं हे महीपाल गद्यपद्येन सिंहराजः ।
सारात्सारं समुद्धृत्वा कथयामि तवाग्रतः ।।

युद्धवीरकथां श्रुत्वा बलदेवो महान् पुनः[2] ।
प्रयागक्षेत्रं विहाय काशीं गन्तुमुपचक्रमे[3] ।।

इति विद्यापतिकविविरचिते भूपरिक्रमणे महाप्रयागविवरणे युद्धवीरकथा समाप्ता ।

---

१. हस्तलेख में 'तत्सौर्य्य' पाठ है ।
२. ,, में 'बलदेवो महाभुजः' पाठ है ।
३. ,, में 'गंतुमुपक्रमे' पाठ है ।

चतुर्थ प्रस्थान

काशीक्षेत्रविवरणम्

वेणीदेशं परित्यज्य गङ्गामुत्तीर्य यत्नतः।
प्रतिष्ठानपुर नगरं[1] जगाम मुनिना सह ॥
चन्द्रवंशराजधानीं त्यक्त्वा च मुषली हली।
नाकदेशं च गतवान् कामचक्रस्य पश्चिमे ॥
सुकर्म्मभूमिकां त्यक्त्वा वाणयोजनसम्मिताम्[2]।
कैवल्यपृथिवीं प्राप्तो हली च मुनिना सह ॥
चतुःक्षेत्रा च यत्रैव चतुर्मुक्तिप्रदायिनी।
विश्वेशो[3] यत्र जागर्त्ति भैरवेन सहान्वितः ॥
काशीक्षेत्रं प्रथमतः पञ्चक्रोशान्विता मही।
यत्र देवा हि तिष्ठन्ति वेष्टनेन मुदान्विता ॥
वरणासि[4] सरितोर्मध्ये क्रोशत्रयमिता मही।
वाराणसीति[5] विख्याता प्राणिनां सायुज्यकारिणी ॥
तृतीयमविमुक्तं च क्षेत्रं क्रोशद्वयान्वितम्।
सारूप्यमुक्तिदं नित्यं मृतेषु प्राणिषु द्रुतम्[6]।

---

१. 'प्रतिष्ठानपुरवर' (डॉ० मुनीश्वर झा, पृ० २४)
२. हस्तलेख मे 'वाणयोजनसंमिता' पाठ है।
३. ,, में 'विशेश्वो' पाठ है।
४. ,, में 'वरुणासि' पाठ है।
५. ,, में 'वाराणसी विख्याता' पाठ है।
६. 'मुनिषु प्राणिषु द्रुतम्' (डॉ० मुनीश्वर झा, पृ० २४)

चतुर्थमन्तर्गृहक्षेत्रं शिवगेहं च तत्स्मृतम् ।
क्रोशमात्रं परिमितं ययौताञ्च शुभां पुरीम् ॥[1]
त्रिकालज्ञेन सहितो बलदेवो महीपते ।
द्वादशरात्रमुवासैव काशीक्षेत्रे समाजग्मुः ॥
बलदेवस्य दर्शनार्थं द्वादशग्रामवासिनः ।
मध्यमेश्वरं समारभ्य सूत्रपाणेः प्रदक्षिणम् ॥
पञ्चक्रोशस्य परिक्रमं[2] कृतवान् कामपालकः ।
कर्द्दमेश्वरं प्रथमं जगाम मुनिना सह ॥
अथान्तरे हड्डिपालदेशमध्ये लाक्षागेहस्य भूमिपः ।
सुरधुनीतीरवासी च पालाशकाननान्तरे ॥
यत्र पुरा सुतपसेनः वन्दनायै सदलैः सह ।
बलदेवस्य निकटे ह्यागतः कातरान्वितः ॥
धनानि हलिने दत्त्वा गतवान् जतुभूमिकम् ॥
आङ्गुलिग्रामद्विजाः सर्वे प्राजग्मुस्ते बलस्य च ।
दिव्यज्ञानं च तेभ्यो हि दत्तवान् नृपसिंहकः[3] ॥
रामेश्वरं कुसुमपुरं गत्वा हि बलदेवकः ।
करेठग्रामवासी च[4] नृपो हि यदुनन्दनः ॥
अतुलमाधुरीं द्रष्टुं कुन्देन्दुधवलां नृप ।
बालिय ग्रामात् समागत्य दुर्गवंश समुद्भवः ॥
पामरो हि महीपालः कपिलतीर्थे समागतः ।
श्रीकृष्णाग्रजं दृष्ट्वा नत्वा चैव पुनः पुनः ॥

---

१. हस्तलेख में परिमितं के बाद के शब्द पढ़ने-लायक नहीं हैं। डॉ० झा ने वाक्यपूरणार्थ अग्रिम शब्दों का प्रयोग किया है।
२, हस्तलेख में 'परिक्रामं' पाठ है।
३. ,, में मात्र 'सिंहक' पाठ है, विसर्ग (:) लुप्त है।
४. ,, में 'पारमोहो' पाठ है।

बहुरत्नं बलदेवाय दत्तवान् मुनिसन्निधौ ।
करिपातशिखरगिरिपादाञ्च दशभूपाः पृथक् ॥
वरणायाः[1] समीपे च कुलस्तम्भस्य सन्निधौ ।
मिलित्वा पूजितवन्तः सर्वे[2] हृष्टरूप विमोहिताः ॥
यक्षिणीदेशवासिनश्च प्रायोहि शक्तिसेवकाः ।
द्विजबन्धुभूरिशाश्चह्यागता दक्ष देशतः ॥
अष्टग्रामात् गण्डाहग्रामात् भद्रग्रामाच्च भूपतिः ।
पूजयामास मतिमान् गोपाल मण्डलाधिपः ॥
विसृज्य[3] सर्वान् भूपालान् नानाधनं प्रगृह्य च ।
वरणायास्तटे लिङ्गं स्थापयामास यत्नतः ॥

आदिकेशवसन्निधाने निशाभागे कामपालं प्रति मुनिः काशीं प्रशंस्य कथां सत्यवीरस्य भूमिप तथा च अक्रूरकथाप्रसङ्गेन महीपते चौरादीनां कथां तत्राश्रावयत्[4] स महामुनिः ।

बृहद्धर्मपुराणाच्च ह्युद्धृत्य विद्यापतिः कविः ।
काव्यरीत्या च प्रोवाच देवसिंहाय भूभृते ॥

●

---

१. हस्तलेख में 'वरुणाय' पाठ है ।
२. ,, में 'पूजितवान' पाठ है ।
३. ,, में 'विसर्ज्य' पाठ है ।
४. ,, में 'तत्रश्रावयत्' पाठ है ।

अथ सत्यवीरकथा

कलौ कामादिभिर्युक्तो मानवोऽनृतवागपि ।
सत्यवीरकथां श्रुत्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥

पुरा हस्तिनापुरनाम्नि नगरे महमन्दनामा यवनेश्वरो बभूव । तस्मिन्नासमुद्रं धरणीवलयं शासति तदुत्कर्षासहिष्णुः काफरराजस्तमभियोक्तुं सकलबलसहितस्तत्राजगाम । यवनेश्वरस्तु तमायातं ज्ञात्वा काम्बोजैरश्वैस्तुरुष्कैश्चाश्ववारैर्बहुभिर्लक्षैः परिवारितः पुराद्[1] बहिर्भूय तेन समं सङ्ग्रामभङ्गी चकार । तदुभयबलसमारब्धे सङ्ग्रामे बलीयसा काफरराज सैन्येन हन्यमाना यवनयोधा रणात्पराङ्मुखा बभूवुः ।

ततस्तादृशं सिंहभयार्दितमिव करियूथं पलायमानं निजबलं दृष्ट्वा यवनेश्वर उवाच—रे रे मम सैन्यसुभटा राजानो राजपुत्राश्च ! युष्माकं मध्ये कोऽपि तथा नास्ति य इदानीं रिपुभयभग्नं ममसैन्यं स्वेन बाहुबलेन क्षणमवलम्बते ।

तच्च यवनराजवचनं श्रुत्वा कार्णाटकुलसम्भवो[2] नरसिंहनामा चौहानकुलसम्भवश्चाचिकनामा च राजकुमारौ प्रोचतुः—राजन् ! क इदानीं निम्नाभिमुखं पततः पाथस[3] इव रिपुत्रास भग्नस्य भवद्बलस्य परित्राता भवतु । यदि क्षणं परावृत्य भवानवलोकते तदाऽऽवामेव भवतोऽरिपक्षं खड्गधाराप्रहार परिचितशिरष्कं करवावः ।[4]

यवनेश्वर उवाच—साधु कुमारौ ! साधु ! युवाभ्यामन्यः क एतादृशं व्यवस्यति ?

ततो नरसिंहदेवः पुलकालङ्कृतबाहुमूलः कुलिशपातानुकारिणा कशाघातेन तुरगं तत्वरयित्वा परावृत्याऽतर्कित एव काफरबलं प्रविवेश । प्रविश्य च जितकाशिनमायान्तं सितातपत्रपरिचितं काफरराजं शल्येन हृदि हतवान् । काफरराजस्तु गतप्राणो[5] भूमौ निपपात । चाचिकदेवेन च भूमौ पतितस्य तस्य शिरश्छित्वा यवनराजस्य पुरो नीतम् ।

---

१. हस्तलेख में 'पुत्राद्' पाठ है ।
२. ,, में 'संभवे' पाठ है ।
३. ,, में 'यथा समुदस्य' पाठ है ।
४. ,, में 'करवाच' पाठ है ।
५. ,, में 'गतःप्राणो' पाठ है ।

यवनेश्वर उवाच—कस्येदं शिरः ?

चाचिकः कथयति—काफरराजस्य।

यवनेश्वर उवाच—केनाऽसौ हतः ?

चाचिको ब्रूते—राजन्! पराक्रम तुलित पार्थेन नरसिंहदेवेन हतः। तत्पश्चादनुगामिना मया शिरश्छिन्नम्।

यवनेश्वरः पृच्छति—नरसिंहदेवः कुत्र ?

चाचिको ब्रूते—काफरराजसन्निधानवर्त्तिभिः स्वामिवधामर्षितैर्माङ्गोल-सुभटैर्बहुभिरेको हन्यमानो मया दृष्टः। क्व गतः क्वेदानीमस्ति वा तावन्न ज्ञायते।

ततो यवनराजः परसैन्यं हतनायकं पलायमानं दृष्ट्वा परमसानन्दो बभूव। पुरुषांस्तदनुगामिनः स्वसैनिकान् प्रत्याह—रे रे मम सैनिकाः! पलायमानान् परसुभटान् किं निहथ ?[१] सम्प्रति मम राज्य रक्षितारं काफरराज-कृतान्तं नररूपिणं सिंहमेव नरसिंहदेवं मे विज्ञापयत्।

तदनन्तरमेकत्र सङ्ग्रामप्रदेशे बहुतरनाराच भिन्नशरीरं वहद्रुधिर-धारासहस्रं पुष्पितं किंशुकमिव वेदनामूर्च्छितं नरसिंहदेवं यवनराजो ददर्श। तुरङ्गादवतीर्य बभाषे—हे नरसिंहदेव! जीविष्यसि ?

नरसिंहदेव उवाच—राजन्! मया यत्कृतं तदवगतं भवता।

यवनेश्वर उवाच—ज्ञातं मया।

कथितं चाचिकदेवेन—त्वया मम शत्रुर्हतः।

नरसिंहदेव उवाच—तर्हि जीविष्यामि। यतः—

स्वीकृतं दुष्करं कर्म मया यस्य हितेच्छया।
तेन विज्ञायमानो मे फलितः श्रमपादपः॥

ततस्तस्य शरीरादापुङ्खनिमग्नान्नाराचानुद्धृत्य यवनराजस्तं कुमारं नाना भेषज प्रयोगेग नियमेन च[२] स्वल्पैरेव दिवसैर्निबाणक्षतमचीकरत्।

तदनन्तरं सहस्रसंख्यैस्तुरङ्गैर्लक्ष्यसंख्यैः काञ्चनैश्छत्रचामरादिभिश्च तं पूजयितुमुपचक्रमे।[३]

प्रसादावसरे नरसिंहदेव उवाच—राजन्! राजपुत्राणां युद्धं स्वाभाविक एव धर्मः। तत् किमद्भुतं मया कृतं यदियं मम पूजा क्रियते ? यदि पूजैव[४]

१. हस्तलेख में 'निहत' पाठ है।
२. ,, में 'प्रयोगेप्योनियमेन तु पाठ' है।
३. ,, में 'तत्पूजयेतुमुचक्रमे' पाठ है।
४. ,, में 'पूजा' पाठ है।

कर्त्तव्या, चाचिकदेवस्य क्रियताम्, येन रिपुशिरोऽप्यानीय सत्यरक्षानुरोधेन भवतः पुरस्तान्मम यशः प्रकाशितं, स्वपौरुषं न ख्यातम्।[१] अन्यथा तेन नीयमानं मारणचिह्नं रिपुशिरो दृष्ट्वा को वाऽध्यगमिष्यत् यन्मया मारितो रिपुरिति। तदयमेव प्रथमं पूज्यताम्।

चाचिकदेव उवाच—कुमार नरसिंहदेव! मा मैवं ब्रूहि। कथमहं तव पराक्रमफलमासाद्य परोच्छिष्टजीवी भविष्यामि ?[२]

नरसिंहदेव उवाच—साधु सत्यवीर! साधु!

अनेन तव सत्येन सर्वमेव विवेचितम्।
महेच्छोऽसि विदग्धोऽसि सती पुत्रोऽसि चाचिक!॥

ततस्तयोः कुमारयोः परस्परालापमाकर्णयता समुपजातपरितोषेण यवनराजेन द्वावपि[३] कुमारौ तुल्यमेव सत्कृतौ।

इति सत्यवीरकथा समाप्ता ॥ ४ ॥

१. हस्तलेख में 'ख्यापितं' पाठ है।
२. ,, में 'जीवीष्यामि' पाठ है।
३. ,, में 'दृष्ट्वापि' पाठ है।

प्रत्युदाहरणकथा

तद्यथा—

विवेकेन विना चौरो विना शौर्य्येण[1] कातरः ।
अलसस्तु विनोत्साहं लोके मर्त्योऽभिजायते ॥

तत्र प्रथमं चौरकथा—

चौरकथा

दयादानादिभिस्त्यक्तो विवेकप्रभवैस्तु यः ।
शौर्य्यं[1] चापि भवेत्तस्य कुवृत्तेरेव कारणम् ॥

तथा—

विवेकेन विना शूरः पापमाचरति ध्रुवम् ।
पुण्यकर्म समर्थोऽपि यथा चौरः सरीसृपः ॥

आसीदुज्जयिन्यां पुरि[2] विक्रमादित्यो नाम राजा। स चैकदा चौरव्यापारदर्शनकौतूहली रङ्कवेषं परिगृह्य निजनगर एव देवायतन सन्निधाने तस्थौ। तथा च तमस्विन्यां रात्रौ निशाभागे चत्वारश्चौराः समागत्य मन्त्रयामासुः। यदिदं गृहादानीतमन्नमत्र भुक्त्वा प्रबुद्धबलाः पुरं प्रविशामः।

विक्रमादित्य उवाच—तदुच्छिष्टं मह्यं दास्यथ ?

चौराः सवितर्कमाहुः—अये ! कस्त्वम् ?

राजोवाच—रङ्कोऽहं क्षुधाकुलितो गन्तुमसमर्थः पतितस्तिष्ठामि।

चौरा ऊचुः—हुँ ! नगरपथपरिशोधसमये दिवाप्यस्माभिर्दृष्ट एवायमत्र। रे रङ्क ! कथमिदानीमप्यत्रैव तिष्ठसि ?

राजोवाच—देवयात्राप्रवृत्तलोकमुद्दिश्य भिक्षार्थमहमत्रागतोऽस्मि। कुत्रान्यत्र यास्यामि ? भिक्षामनासाद्य बुभुक्षितः पतितस्तिष्ठामि।

चौरा ऊचुः—यदि तुभ्यमुच्छिष्टमन्नं दास्यामस्तदा किं नः प्रयोजनं करिष्यसि ?

---

१. हस्तलेख में 'सौर्येण' पाठ है।

२. ,, में 'आसीदुज्जयनिनामरिपु' पाठ है।

राजोवाच—तुङ्गं तुङ्गं धनिक गृहं दर्शयिष्यामि, चोरितवस्तुभारं च वोढाऽस्मि ।

चौरा ऊचुः—ततस्तिष्ठ । ग्रहीष्यस्युच्छिष्टमन्नम् । ततः कृतभोजनैश्चौरैर्दीयमानमुच्छिष्टं कर्परे कृत्वा वेतालेन[१] हारयित्वा च राजोवाच—अद्याऽहं कृतार्थोऽस्मि युष्माकं प्रसादेन ।

ततस्तेषां मध्ये सरीसृपनामा मुख्यचौरोऽब्रवीत्—यदहं शाकुनिक शास्त्रे कृतश्रमोऽस्मि ततः शृगालाः किं वदन्तीति जानामि ।[२]

इतर ऊचुः—जानीहि ।

सरीसृप उवाच—सखायः ! श्रूयताम् युष्माभिः शृगालो वदति—युष्माकं मध्ये चत्वारश्चौरा एको राजाऽस्तीति ।

त ऊचुः—वयं परस्परं चत्वारोऽपि चिरपरिचिता एव । पञ्चमोऽसौ रङ्को दिवाऽपि दृष्टोऽत्राप्युच्छिष्ट ग्राही दृश्यते । ततः कुतोऽत्र राजशङ्का ?

सरीसृप उवाच—शृगालभाषितं मिथ्या न भवति ।

त ऊचुः—प्रत्यक्षबाधितेऽर्थे का दुःशङ्केति ।[३]

ततो वाकोवाक्यं कृत्वा पञ्चापि पुरुषाः पुरं प्रविविशुः ।[४] पुरपतिगृहे सन्धि कृत्वा बहूनि धनानि चोरयित्वा नगराद्बहिरागत्य गर्त्ते चिक्षिपुः । चौराश्चत्वारोऽपि सरसि कृतस्नानाः पुनर्नगरमागत्य मदिरागृहं विविशुः । राजा च स्वकीयमागारमाजगाम ।

तदनन्तरमास्थानमण्डपे सर्वावसरंकृत्वा सिंहासनोपविष्टो दण्डनायकमाहूयादिदेश ।

राजोवाच—अये परलक्षक ! त्वमाज्ञापालोऽसि किमपि रात्रिचरित्रं न जानासि ? गच्छ तावदिदानीं चत्वारश्चौराः पिचिण्डिलनाम्नः शौण्डिकस्य गृहे मद्यं पिबन्तः सन्ति । तान् शृङ्खलबद्धान् कृत्वा सत्वरमानय । दण्डनायकः प्रणम्य गत्वा तथा कृतवान् ।

राजोवाच—रे रे मम सखायश्चौराः ! परिचिनुथ माम् ?

सरीसृप उवाच—देव ! मया तदैव परिचितो भवना् । किन्त्वमी सखायः परमदुष्टाः शृगालस्यापि कथितमतथ्यं निर्द्धारितवन्तः । किमहं करोमि ? सखिवचनैः प्रमत्तोऽस्मि ।

---

१. हस्तलेख में 'वेताले' पाठ है ।
२. हस्तलेख में 'जनाति' पाठ है ।
३. हस्तलेख में 'दुःसेकेति' पाठ है ।
४. हस्तलेख में 'प्रति विविशुः' पाठ है ।

तथाहि—

एक एवहि नीतिज्ञः कर्म कृत्वा सुखी भवेत् ।
बहूनपेक्षमाणस्य स्थानात् प्रच्यवते मतिः ॥

अपि च—

ज्ञातसारोऽपि शूरोऽपि पण्डितोऽपि क्रियापरः ।
निमज्जति महाराज ! बहूनां मतिकर्दमे ॥

राजोवाच—रे चौराः! परोपदेश परिग्रहजं निज प्रमादं शोचथ। स्वज्ञानदोषजकथां न शोचथ ।

चौरा ऊचुः—कोऽस्माकं ज्ञानदोषजन्मा प्रमादः ?

राजोवाच—स्फुट एवायं युष्माकम् प्रमादोऽस्ति यद्वीरवृत्ति समर्था अपि चौरवृत्तिमाश्रयथ ।

तथाहि—

येनान्ये प्रभवन्ति भूमिवलये नन्दन्ति लब्धश्रियः ।
पुण्यं पण्डितमण्डलीषु परितः शुद्धं लभन्ते यशः ॥
तेनैव कृतिसाधकेन महता शौर्य्येण निन्दास्पदम् ।
यूयं गच्छथ चौरतां भुवि कथं हा दुस्त्यजा दुर्मतिः ॥

चौरा ऊचुः—देव ! दुर्मतिरेवात्र कारणम् ।

राजोवाच—यद्येवं स्वीकुरुथ तदा किन्न त्यजथ तां दुर्मतिम् ?

चौरा ऊचुः—देव ! दरिद्रता तत्परित्यागप्रतिबन्धकाः ।

यतः —

पापे नियोजयति भोजयतीह दुःखं
स्तेयं च पाठयति शाठ्यमुत्पादयन्ती ।[1]
दीनं च वाचयति याचयते[2] च हीनं
किं नैव[3] कारयति हन्त ! दरिद्रता नः ॥

---

१. हस्तलेख में 'साध्यमुपातयंति' पाठ है ।

२. हस्तलेख में 'जापयते' पाठ है ।

३. हस्तलेख में 'किं किं न' पाठ है ।

राजेवाच—रे चौराः ! युष्माकं दरिद्रता तदैव गता यदा मया सह सखिभावो यातः। सखिभावस्तु तुल्यप्रतियोगिक एव सम्भाव्यते। कथं युष्माकं सख्यमालम्ब्य[1] क्षणमहं चौरतां गतोऽस्मि ? कथं मम सख्येन यूयं राजतां न यास्यथ ? तदग्रेऽपि परिहरिष्यथ दुर्मतिमिमाम् ?

चौरा ऊचुः —कथं न त्यक्षामः ?

राजोवाच—इदानीं शृंखलाबद्धा यूयं किं न स्वीकुरुथ ?

तथाहि—

आक्रमे पतितां दृष्ट्वा जिह्वा ललितया गिरा ।[2]
दूषणं किं न मुञ्चन्ति किं न गृह्णन्ति वा गुणम् ॥

अथवा पुनर्यदि कुवृत्तिं कुरुथ तदा पुनरिमामेव दशां प्राप्स्यथेत्यभिधाय पुरपतिधनं पुरपतेर्दापयित्वा स राजा चौरान् मुमोच। तेषां मध्ये सरीसृपनामानं मुख्यचौरं शाल्मलिपुरे राजानं चकार। तदितरान् चौरान् काञ्चनैरदरिद्रीकृत्य करुणया कुतूहलेन च[3] प्रस्थापयामास।

ततः कियतापिकालेन तेन राज्ञा चिन्तितम् यत् सरीसृपो मया राजा कृतः। स चौरो राजपदवीं प्राप्य किमिदानीमाचरतीति निरूपणीयं भवति। यतः—

दुर्बलस्य गुरुर्भावो[4] दुष्टाग्नेर्गुरु भोजनम् ।
राज्यं गुरु च दुर्बुद्धेः परिणामसुखं कुतः ॥

ततः स राजा सुचेतनं[5] नाम चार पुरुषं प्राप्तराज्यस्य चौरस्य चरित्रनिरूपणाय प्रस्थापयामास। चरस्तु तत्र गत्वाऽधिगतसर्ववृत्तान्तः पुनराजगाम।

राजोवाच—सुचेतन ! कथय वार्त्ताम्।

चर उवाच—देव ! भवतः पथ्यमपथ्यं वेति नाऽहं विचारयामि।

तथ्यं कथयामि। अलीक भाषणं नोचितं चार पुरुषस्य।

---

१. हस्तलेख में 'सख्यमानस्य' पाठ है।

२. 'पुरुषपरीक्षा' में 'आक्रमे पतिता दुष्टा जिह्वाग्रगतया गिरा' पाठ है। र० झा, पृ० २७।

३. हस्तलेख में 'च' लुप्त है। 'पुरुषपरीक्षा' में 'च' के स्थान पर 'वा' है।

४. 'पुरुषपरीक्षा' में 'गुरुर्भारो' पाठ है। (र० झा, पृ० २८)

५. हस्तलेख में 'सुचिन्तनं' पाठ है।

तथाहि—

काणेन चक्षुषा जन्तुर्यथा किञ्चिन्न पश्यति ।
न पश्यति तथा राजा चरेणानृत भाषिणा ॥

तदहं यथादृष्टं तच्चरितं पद्यैरुपवर्णयामि । शृणोतु देवः ।

एकस्य[1] कृपयातस्मै राज्यं दत्वा दुरात्मने ।
पराऽनिष्ट प्रवीणाय बहूनां विपदः कृताः ॥
स दुर्वृत्तः पुराऽप्यासीत् समर्थो भवता कृतः ।
दुर्वृत्तश्च समर्थश्च किं नाम न करिष्यति ॥
कृपयान्वितचित्तेन[2] भवतापि॰ महात्मना ।
दुर्गतिः खण्डिता तस्य प्रकृतिस्तु न खण्डिता ॥
यशः पुण्यं सुखं चेति त्रयं राज्यतरोः फलम् ।
तच्च नाप्नुवतस्तस्य किं राज्येन प्रयोजनम् ॥
साधूनां हरते द्रव्यं हन्तिमानं मनस्विनाम् ।
निज सौकर्य लोभेन किमकृत्यं दुरात्मनः ॥
रमते[3] च परस्त्रीभिः स्थिरं जानाति जीवितम् ।
पश्यन्नपि च कामास्त्वं यमस्यास्त्वं न पश्यति ॥
नावसीदति पापेन लज्जते नापकर्मणा ।
न तृप्यति परस्वेन घस्मरस्य कुतो घृणा ॥
ब्रवीति चौरवृत्याऽहं गतोऽस्मि राजतां यथा ।
त्यजामि केन दोषेण तामात्महितकारिणीम् ॥[4]
राज्यं भवति दुर्वृत्तेरित्यर्थमिति तत्परः ।
स्वयं पक्षश्च दृष्टान्तो दुर्वृत्तिं नैव मुञ्चति ॥

---

१. पुरुषपरीक्षा' में 'एकस्मै' पाठ है। (र० झा, पृ० २८)
२. 'पुरुषपरीक्षा' में 'कृपास्तिमितचित्तेन' पाठ है। (र० झा, पृ० २८)
३ हस्तलेख में 'रमन्ते' पाठ है।
४. हस्तलेख में 'हितकारिणां' पाठ है।

अपिद्विपघटाकीर्णमपि वामाशतान्वितम् ।[1]
विवेकेन विना राज्यं शोभते न दुरात्मनः ॥
शिवस्वमपि नाग्राह्य[2] नावध्या ब्राह्मणा अपि ।
दस्यौ शासति भूभागं मुनेरपि न मान्यता ॥
स्वयं कृतानि कर्माणि स्वयमेव विलुम्पति ।
तृष्णोपप्लुत चित्तानां स्थैर्यमात्मकृते कुतः ॥

राजोवाच—सुचेतन ! एभिः पद्येस्तस्य दुरात्मनश्चरितं विदित्वा दुःखस्थोऽहं[3] वृत्तोऽस्मि । मन्ये ममापि दुरकीर्त्तिरियम् ।

चर उवाच—देव ! दुःकीर्त्तिः केवलं भवत एव । यतः परितो लोकाः पठन्ति ।

सा लज्जा साहसाङ्कस्य चौरराजस्य यद्यशः ।
यत्तयोः स्फुटतां यातः सखिभावः परस्परम् ॥
हीन संवर्द्धनासक्तो हीयते हि महानपि ।
मृगमङ्के समारोप्य लेभे चन्द्रः कलङ्किताम् ॥

राजोवाच—तत्किमुचितमिदानीम् ?

चर उवाच—देव ! महतामपयश एव निवारणीयं भवति ।

तदियत्क्षणपर्यन्तं सुखापनेयमस्ति । जनाननेषु लब्धपदा दुःकीर्त्तिर्दुरपनेया भविष्यति ।

ततो विक्रमादित्येन प्रच्छन्नवेशधारिणाचौरस्य राज्यं गत्वा चरवचनं परीक्षितम् । पश्चाच्चौरो राजपदादवतार्य पूर्वामेव दशां प्रापितो हतश्च ।

श्लोकस्तु—

उल्लंघ्यास्तुपुरी पुराविद्जनो धत्तां गुणैर्गौरवम् ।[4]
स्वैरं सम्प्रति सञ्चरन्तु वणिजो मार्गे विमुक्ता पदि ॥

---

१. हस्तलेख में 'रामाशतान्वितम्' पाठ है ।

२. हस्तलेख में 'न ग्राह्यं' पाठ है ।

३. हस्तलेख में 'स्वस्थोऽहं' पाठ है ।

४. पाठभिन्नता—
(क) 'उल्लाघास्तुपुरी पुराविदि जनो'—पुरुषपरीक्षा : र० झा, पृ० ३०
(ख) 'उल्लाघास्तुपरीगण'—पुरुषपरीक्षा : सुमन; पृ० २६
(ग) 'उल्लंध्यास्तुपुरी पुरा विद्वज्जनो' : भूपरिक्रमण : मु० झा; पृ० ३५

विद्रां तु प्रति मन्दिरं च धत्ते जनो जागर्त्तु धर्मोद्भवः ।
साधुद्वेषिणि साऽपराध रिपुणा चौरे हते भू भुजा ॥[1]

इति विद्यापतिकविविरचिते भूपरिक्रमणग्रन्थे
काशीतीर्थोभयकथाविवृत्तिः समाप्ता ।

---

१. हस्तलेख में 'भूभुजा' पाठ है ।

पंचम प्रस्थान

सिद्धदेशविवरणम्

अथान्तरे प्रभाते च काशीं त्यक्त्वा मुषली हली ।
स्वर्गभूमिं च गतवान् जैनदेवस्य सन्निधौ ॥[1]
सारनाथश्च तत्रैव वर्त्ततेचाति शोभनः ।
अजगर सर्पस्य वृत्तान्तं कलेः शापञ्च गमिष्यति ॥
स्वर्गभूमिं परित्यज्य संतीर्य्य गोमती नदीम् ।
त्रिदलकाननं संस्पर्श्यं गाधिदेशं विहाय च ॥
वामनाश्रमं च्यवनाश्रमं गतवान् क्रमषो हली ।
च्यवनमुनिं प्रणम्याथ निर्जरौषधिमापिवत् ॥
कारुषं दक्षिणे कृत्वा कर्म्मनाशां विहाय च ।
ताडका विपिनान्ते च रामरेखां ददर्श ह ॥
सिद्धाश्रमं पञ्चक्रोश योगिनां सिद्धिदायकम् ।
सप्तयोजन परिमितो देशो हि कर्कशः सदा ॥
भोजभूपस्य वंशेन शासितो देश वृन्दकः ।
गोतमस्य प्रिया भार्य्या सार्द्धयोजन मध्यतः ॥
अहल्यावाटिका लोके विख्याता च नदी तटे ।
सोमलालो महाग्रामो यत्र राजा ह्यभून् जहो ॥
विदुषामन्यतमः नामा च भोजः सर्वगुणोत्तमम् ।
हठपुरग्राममध्ये राजपुत्रोहि[2] भूपतिः ॥

---

१. हस्तलेख में 'सन्निधि' पाठ है ।
१. हस्तलेख में 'राजपुत्रो' पाठ है ।

विक्रमादित्यसन्तान वसतिस्तत्र भूयसी ।
अनेके[1] राजपुत्राहि वसन्ति देशमध्यतः ॥
भूम्यां हि शासनं राजन् तत्रकलौ चकार ह ।
त्रिशत ग्राम मुख्याश्च सिद्धदेशेषु विश्रुताः ॥
रामभक्ताहि तत्रैव जागरन्ति ग्रुगेषु च ।
विश्वामित्रस्थले शीघ्रं गत्वा हि मुनिना सह ॥
पञ्चदिनं कामपालो नानाज्ञानमगान्नृप ।
ताडकावधवृत्तान्तं हलिने स न्यवेदयत् ॥
श्रुत्वा हि सर्ववृत्तान्तं विश्वामित्रं च पृष्टवान् ।
गङ्गाया उत्तरे पारे दर्दुरक्षेत्रं जगाम ह ॥
वलिग्रामश्च तत्रैव सरयूसङ्गमान्तिके ।[2]
त्रिकोणक्षेत्रं[3] केचिच्च गायन्ति दर्दुरे नृप ॥
अष्टयोजनपरिमितो द्विशतग्रामसंयुतः ।
भार्गवमुनेश्च सुस्थानं सर्वलोकविमुक्तिदम् ।
लोहडिग्रामो यत्रैव विश्रुतो वालियान्तरे ॥
ताजपुराख्य महाग्रामो बलदेवो मुनिना सह ।
प्रदक्षिणं क्षेत्रमपि चकार मुनिना सह ॥
त्रिविक्रम मूर्त्तिश्च यत्रैव गृहीतो येन विष्णुना ।
श्रावणशुक्लपक्षीयपञ्चदश्यां हि बामनः ॥
वलिराजनिकटे याञ्चांच[4] कृतवान् पुरा ।
त्रिविक्रमस्थले हि मुनयः सन्ति तद्दिनो तटे ॥

---

१. हस्तलेख में 'अनेकै' पाठ है ।
२. हस्तलेख में 'संगमातिके' पाठ है ।
३. हस्तलेख में 'त्रिकोणक्षेत्र' पाठ है ।
४. हस्तलेख में 'याचाच' पाठ है ।

त्रिपाद भूमिश्च[1] यत्रैव हतवान् वामनेश्वरः ।
वालिग्रामसमः कश्चित् पुण्यभूमिर्न विद्यते ।।
सरयूगङ्गयोः सङ्गे दानकग्रामः[2] पुरा स्थितः ।
सङ्गमवेगतो येन ताडितो देवसिंहराट् ।।
यत्र शुक्राचार्य्यमुनिः काणत्वं प्राप्तवान् कुशैः ।
दिवसत्रयं च तत्रैव ह्युषितः[3] मुनिना सह ।।
वज्रसारमहीपालं चोद्धृतवान् सङ्गमान्तिके ।
चम्पारण्यदेशीयनृपं दिव्यज्ञानं जगाम ह ।।
पद्यछन्देन त्रिकालज्ञो भीरुणां कथितवान् कथाम् ।
तच्च रीत्या हि लोकस्य काव्यरीत्या च भूमिप ।।
लक्षीकृत्य पद्यवाक्यम् तेनें विद्यापतिः कविः ।
यवनादिनाम संगृह्य नानाभूपकथान्वितम्[4] ।।

---

१. हस्तलेख में 'भूमिंच' पाठ है ।
२. हस्तलेख में 'दानक ग्रामा' पाठ है ।
३. हस्तलेख में 'दिवस प्रं चतत्रै वह्युषितो' पाठ है ।
४. हस्तलेख में 'कथान्वितां' पाठ है ।

अथ भीरुकथा

पुमान् शौर्यविहीनस्तु कातरः कथ्यते बुधैः ।
स प्राण कातरो भीरुः कृपणोधन कातरः ।।
अपदेऽप्यापदा शङ्का स्तोकबुद्धिर्निजे बले ।
अभीमे भीम संवित्तिर्भीरोः सर्वत्र जायते ।।

बभूव गङ्गादक्षिणकूले पारिभद्रो नाम राजा। स च प्रकृत्या भीरुः पितुरुपार्जिते राज्ये मन्त्रिभिः क्रियमाणः प्रभुरभूत् । पश्चात्तस्य भीरुतां दृष्ट्वा सन्निकृष्टराजानस्तद्भूमिसीमानमाचक्रमुः। यथा यथा शत्रवस्तस्य सीमानमाक्रान्तवन्तस्तथा तथा स भूमिं परितत्याज । तथाहि—

यः शान्तप्रकृती राजा शौर्य्ये[1] शक्तिमदर्शयन् ।
विना युद्धेन संधत्ते सोऽरिभिः परिभूयते ।।

यतः—

शत्रवः पिशुना रोगाः स्वभावादपकारिणः ।
अप्रतिक्रियमाणास्तु प्रभवन्ति पदे पदे ।।

क्रमेण शत्रूणामाक्रमं तस्य राज्ञो भीरुतां च[2] दृष्ट्वा मन्त्रिण ऊचुः—देव ! भवतः सहिष्णुतया भूमिराक्रान्तैव शत्रुभिः, परिशिष्टरक्षार्थमपि शक्तिर्दर्शयितव्या भवति।

राजोवाच— का शक्तिर्दर्शयितव्या ?

मन्त्रिण ऊचुः—युद्धेन प्रभुशक्तिः ।

राजोवाच—एषमः[3] सन्धिरेव क्रियताम् । परुत् कर्त्तव्यमेव युद्धम् ।

मन्त्रिण ऊचुः—यत्तदा कर्त्तव्यं तदिदानीमेव कथं न क्रियते ? अवश्य कर्त्तव्ये कर्मण्यलङ्कालाति पातेन।

राजोवाच—युद्धे सति करितुरगपदातयः पातयितव्याः[4] ।

---

१. हस्तलेख में 'सौर्य्य' पाठ है।
२. हस्तलेख में 'च' नहीं है।
३. हस्तलेख में 'एषतः' पाठ है ।
४. हस्तलेख में 'पातयित्वा' पाठ है।

मन्त्रिण ऊचुः—यदि युद्धं न कर्त्तव्यं तदा सेनायाः किं प्रयोजनम् ? युद्ध-प्रयोजिकैव सेना । युद्धे पतिष्यति, पतिष्यति ।

राजोवाच—युद्धे न केवलं सैन्यं पतति, स्वपातशङ्काऽपि विद्यते । यद्युभयबल सङ्ग्रामे प्रवर्त्तमाने प्रथमः शरो मम हृदि लगति तदा भवद्भिः स्वामिवत्सलैः किं क्रियते ?

अतएवोक्तं नीतिशास्त्रे—

अपि सर्वस्वमुत्सृज्य[1] समयं लङ्घयेद् बुधः ।
समयो लङ्घितो येन तेन किन्नैव लङ्घितम् ॥

मन्त्रिण ऊचुः —

अशक्तौ च विपत्तौ च पथ्यं समयलङ्घनम् ।
सामर्थ्ये सति कृत्येषु क्षणं न क्षमते बुधः ॥

इदानीं भवान् समर्थः शत्रून् यदि न पराभविष्यति तदा लब्धप्रसराः शत्रव एव भवन्तं पराभविष्यन्ति ।

राजोवाच—तर्हि युद्धपरिपन्थी मम प्रतिनिधिः कश्चित् क्रियताम् ।

मन्त्रिण ऊचुः—राजन् ! हीनबलं हन्तुं कञ्चित् प्रतिनिधिं कुरु । समानबलसङ्ग्रामे स्वयमेवोद्धुरो भव ।[2]

यतः—

सौभाग्यं परसौन्दर्याद् राज्यं परपराक्रमात् ।
परबुद्धेश्च विज्ञानं न कैश्चिदनुमन्यते ॥

राजोवाच– मन्त्रिणः ! किमपि ब्रूत, युद्धाय नोत्सहते मदीयं मनः । यदि मां घातयितुमिच्छन्ति भवन्तस्तदा प्रेरयन्तु युद्धे ।

तस्य राज्ञस्तद्वचनमाकर्ण्य मन्त्रिणः सर्वे तस्मादुत्थाय बहिर्बभूवुः । परस्परमुदीरयामासुश्च यदयं कुमारः पितरि जीवति विचक्षणः कृतिक्षमश्चोपलक्षितः । पितर्युपरते भीरुर्दृश्यते । कथमस्य राष्ट्रं स्थास्यति ?

---

१. 'पुरुषपरीक्षा' में पाठ-भिन्नता 'अपिदेशं समुत्सृज्य' है (रमानाथ झा, पृ० ३२) यद्यपि वहाँ भी पाद-टिप्पणी में संकेत है कि हस्तलेख में 'देशं' के स्थान पर 'सर्वस्वं' ही है ।

२. 'पुरुषपरीक्षा' तथा अन्य संस्करण में इस उक्ति को पद्यबद्ध अंकित किया गया है । किन्तु, यह स्पष्ट गद्यमय वार्त्तालाप है । आगे श्लोक अंकित है ।

यतः —

यावदासीत् परायत्तो तावद्दृष्टोऽयमुद्भटः ।
प्रायः स्वातन्त्र्यमासाद्य स्वभावं भजते नरः ॥[१]
यावदासीत् पितुः क्रोडे तावद्दृष्टः क्षतिक्षमः ।
भारे च पतिते मूर्ध्नि स्फुटीभूताऽस्य भीरुता ॥

भीरुता च महद्दूषणं पुरुषस्य । यतः—

भीरुं नोपशेते न कमला भीरोः करे वर्द्धते ।
भीरुं हन्त[२] पराभवन्ति पिशुना भीरुं हसन्ति स्त्रियः ॥
तर्काभासशताकुलस्य परितः शङ्काम्बुधौ मज्जतो ।
भीरोः पुंस्त्वपह्नुतं च विधिना स्त्रीत्वं च नोन्मीलितम् ॥[३]

यतः —

गिरिकम्बुरलीनोऽपि[४] सेनाकोटिवृत्तोऽपि च ।
तीर्णसप्तसमुद्रोऽपि भीरुर्भीतिं न मुञ्चति ॥

तस्य भीरुतया क्रमक्रमेण राज्यमिदं क्षीणमेव भविता । अस्माभिः किं कर्त्तव्यं तच्चिन्तनीयं भवति । यतः—

स्वेन दोषेण दुष्टात्मा स्वयं नश्यति केवलम् ।
भूपालस्य तु दोषेण नश्यन्ति सकलाः प्रजाः ॥

अस्माभिः सपरिवारैः सधनैरत्र[५] स्थीयते यद्ययमिदानीं परित्यज्यते स्वामी तदा लज्जा पापं च, यदि नत्यज्यते तदा विनाशस्तत्किमत्र विधेयं भवतीति महान् सन्देहः ।[६] सन्देह निर्णयफलिकैव बुद्धिरस्ति । ततः करोत्वयं राजा सन्धानम्, गच्छतु समयः । यतः—

भेतव्यं नापदस्तस्याः क्षणो यामन्तरा भवेत् ।
को जानाति क्षणा दूर्ध्वं विधाता किं विधास्यति ।

---

१. हस्तलेख में दोनों पंक्तियों के अन्तिम विसर्ग (ः) लुप्त हैं ।
२. हस्तलेख में 'हन्ति' पाठ है ।
३. ये दोनों श्लोक 'पुरुषपरीक्षा' में इस स्थान पर उपलब्ध नहीं हैं ।
४. 'पुरुषपरीक्षा' में 'गिरिकन्दर लीनोऽपि' पाठ है । (र० झा)
५. हस्तलेख में 'सधनरत्र' पाठ है ।
६. हस्तलेख में 'महत्संदेहः' पाठ है ।

इति परामृष्य मन्त्रिणः सर्वे स्वं स्वं गृहं जग्मुः।

स तु पारिभद्रो राजा स्वकीय भीरुतया क्रमेण शत्रुभिराक्रम्य गृह्यमाणः शत्रुसैन्यस्य भेरीरवं श्रुत्वा मन्त्रिणः पप्रच्छ– अहो भिषजां मते[1] भेरीशब्दो भेदको भवति।

मन्त्रिण ऊचुः—कुमार! भेरीशब्दो न भेदको, भवतो भीरुता भेदिका[2]। पश्चादरीणां भेरीरवं श्रुत्वा दूरादेव पलायितः।

महत्त्वं गूढमेवास्ति[3] दूरे तिष्ठतु पौरुषम्।
यत्पितुः सञ्चितं राज्यं भीरुणा तच्च हारितम्॥

अपिच—

भीरुं नाश्रयते जनो न कमला भीरोः करे वर्द्धते।
भीरुं हन्त! पराभवन्ति पिशुना भीरुं हसन्ति स्त्रियः॥
तर्काभास शता कुलस्य परितः शङ्काम्बुधौ मज्जतो।
भीरोः पुंस्त्वमपह्नुतं च विधिना स्त्रीत्वं च नोन्मीलितम्॥[4]

इति भूपरिक्रमणग्रन्थे बलदेवतीर्थयात्रायां सिद्धदेश-[5]
विवरणे भीरुकथा समाप्ता।

---

१. हस्तलेख में 'भिजांतरे' पाठ है।

२. हस्तलेख में 'भेदका' पाठ है।

३. 'पुरुषपरीक्षा' में 'गूढमेवास्तु' पाठ है।

४. इन दोनों श्लोकों की पुनरावृत्ति इस कथा में हुई है। हस्तलेख में दोनों जगह ये श्लोक विद्यमान हैं। 'पुरुषपरीक्षा' में इसी स्थान पर अर्थात् अन्त में ये श्लोक हैं, कथा के मध्य में नहीं। अन्त में ही इसका स्थान उपयुक्त मालूम पड़ता है।

५. हस्तलेख में 'सिद्धदेशवलिदेशविवरण सम्पूर्ण' पाठ है।

नृसिंहतीर्थविवरणम्

अथान्तरे कामपाल:[1] पञ्चयोजन व्यत्यये ।
नृसिंहतीर्थञ्च प्राप्तवान् द्वे पत्तने विहाय च ॥
पत्तनं भोजराजस्य तथा पालित पत्तनम् ।
मणिहारि सन्निधाने नृसिंहतीर्थं जगाम ह ॥
त्रिकालज्ञो मुनिवर:[2] प्रोवाच हलिनं प्रति ।
पाद्यकल्पे नृसिंहदेव:[3] प्रकटं प्राप्तवान् पुरा ॥
शोणगङ्गासङ्गमे च माघे मासि च यो नर: ।
उषसि स्नानं कृतवान् पापं देहाद् विमुच्यते ॥
नृसिंहनखारभूमिश्च त्रयोदशयोजनान्विता ।
कारुषपाटलिपुरयोर्मध्यवर्त्तिनी या भूमि: ॥
सैव भूमिर्महीपाल अस्त्युग्रा चातिनिर्दया ।
प्रायो हि फेणसम्भवा च शुद्धशस्यबिवर्जिता ॥
द्विशतग्राममुख्या हि नृसिंहभूमिर्विश्रुता[4] ।
विश्वम्भरपुरं रम्यं तथा चाराणपत्तनम् ॥
जगदीशपुरं तत्र कुडमिजाति सुखास्पदम् ।
भालुकाघट्टोहि तत्रैव सदा दस्यु भयं महत् ॥
प्रायशो दुष्टमानुषाणां वसतिस्त्रिषु युगेषु च ।
पञ्चरात्रं कामपालो वसति कृतवान् तटे (तदा) ॥

---

१. हस्तलेख में 'कामपालो' पाठ है ।
२. हस्तलेख में 'मुनिवरो' पाठ है ।
३. हस्तलेख में 'नृसिंहदेवो' पाठ है ।
४. हस्तलेख में 'नृसिंह भुवि विश्रुता' पाठ है ।

कृपणस्य कथां काञ्चित्[1] त्रिकालज्ञो बलं प्रति ।
प्रोवाचत्वरया तत्र व्यासमुनि विभाषिताम्[2] ॥
तामेव साम्प्रतं भूप निमिदेश निवासकृत ।
श्रूयतां गद्यपद्येन नानाकौतुकसंयुतम्[3] ॥
कियत् काव्यं कलेर्वृत्तं सहितं प्रोच्यते मया ॥
कृपणस्य कथां श्रुत्वा बलदेवो मुनेर्मुखात् ।
प्रहर्षणं च प्राप्तवान् शोणसङ्गम कच्छगः ॥

इति भूपरिक्रमणग्रन्थे नृसिंहतीर्थविवरणं समाप्तम्[4] ।

---

१. हस्तलेख में 'किंचित्' पाठ है ।
२. हस्तलेख में 'व्यासमुनि भाषितां' पाठ है ।
३. हस्तलेख में 'संयुतां' पाठ है ।
४. हस्तलेख में 'नृसिंहतीर्थविवरणे कृपणकथा समाप्ता' पाठ है। कृपण-कथा आगे समाविष्ट है। सम्भवतः मौलिक रूप से उसे यहीं रखने की योजना थी। परिसमाप्ति-वाक्य से यही अनुमान होता है ।

सप्तम प्रस्थान

जनकदेशविवरणम्

अथान्तरे बलदेवो हि नरहरिनामदेशकम् ।
परित्यज्यैव गतवान् देशं पाटलिसंज्ञकम् ॥
तत्र देवीं पूजयित्वा दृष्ट्वा नगरशोभनम् ।
गङ्गामुत्तीर्य गतवान् गङ्गागण्डकीसङ्गमम् ॥
तत्र स्नात्वा तर्पयित्वा तोरभुक्तिं विहाय च ।
जनकदेशं गतवान्[1] सहितो मुनिना नृप ॥
अष्टरात्रं तत्रोवास[2] नानातीर्थं चकार ह ।
द्वाविंशतियोजनमितः सहस्रग्रामसंयुतः ॥
प्रायोह्युदारा हि नरा नीचयोनिषु सम्भवाः ।
जनकपुरदक्षिणांशे सप्तक्रोश[3] व्यतिक्रमे ॥
डिजगलमहाग्रामे गेहास्तु जनकस्य च ।
(प)यमुना सरितां श्रेष्ठा[4] सदा वहति वेगगा ॥
डिजगलदक्षिणे भागे योजनार्द्धव्यतिक्रमे ।
गिरिजासंज्ञको ग्रामो विश्रुतो[5] देशवासिभिः ॥
प्राचीनमन्दिरं तत्र पुष्करिणीद्वयान्तरे ।
भैरवस्थानं च गतवान् बलदेवो मुनिना सह ॥

---

१. हस्तलेख में 'गतवान' शब्द लुप्त है ।
२. हस्तलेख में 'अष्टौ रात्रि तत्र वासो' पाठ है ।
३. अन्यत्र 'सप्रयोजन' पाठ है (डॉ० मुनीश्वर झा, पृ० ४६)
४. हस्तलेख में 'श्रेष्ठा' शब्द नहीं है। अभावपूर्णार्थ यहाँ प्रयुक्त है ।
५. हस्तलेख में 'विश्रुता' पाठ है ।

पूजयित्वा भैरवं च गतवान् सीतामण्डपम्[१] ।
विवाहो हि पुराजातो यत्र सीतायाः ग्रन्थिबन्धनम् ॥
सीताकुण्डदक्षिणांशे क्रोशत्रयव्यतिक्रमे ।
चण्डीस्थानं च तत्रैव जार्गात यत्र[२] देविका ॥
सीताकुण्डदक्षिणांशे सुरशास्ये तु भूपते ।
सुरस्थानेदक्षभागे सप्तक्रोशव्यतिक्रमे ॥
धनुषग्रामो महीपाल विपिनान्तरमेव हि ।
परशुरामकुण्डं महाग्राम[३] आहीराणां निवासभूः ॥
गोरसं बहुलं तत्र ग्रामीणाः संवसन्ति हि ।
गिरिजादक्षिणे भागे पञ्चक्रोशव्यतिक्रमे ॥
आहारीग्रामो महाग्रामो गोतमकुण्डस्य सन्निधौ ।
अहल्यावटश्च पूजितः[४] ह्रस्वा नदीषु विश्रुता ॥
कमलानदी नाति दूरे चाहारीपत्तनस्य (च) ।
जनकपुरो दक्षिणे च पञ्चक्रोशव्यतिक्रमे ।
विशोरी हि महाग्रामः तत्रैव बहिः स्थितः[५] ॥
पञ्चक्रोशव्यत्यये च अरगाजापुकुण्डं चैव ।
तत्रैव हि विख्यातं[६] दशरथकुण्डमेव च ॥
दशरथकुण्डे च गङ्गासागर कुण्डके ।
जलेश्वरो महादेवः प्राचीनमन्त्रतः सदा ॥
जलेशयञ्च परित्यज्य प्रविष्टो जलान्तरे ।[७]

---

१. हस्तलेख में 'सीतामण्डप भूमिका' पाठ है ।
२. हस्तलेख में 'यत्र' शब्द लुप्त है ।
३. हस्तलेख में कुण्ड 'महाग्रामो' पाठ है ।
४. हस्तलेख में 'अहल्यावडश्च पूजयित्वा' पाठ है ।
५. हस्तलेख में 'महाग्रामः तत्रै व' पाठ लुप्त है ।
६. हस्तलेख में 'तत्रैव हि विख्यातं' पाठ लुप्त है ।
७. हस्तलेख में 'जलेश च परित्यज्य पुरातनांतरे' पाठ है ।
यहाँ क्रमभंग प्रतीत होता है । एक पंक्ति स्पष्टतः लुप्त होने के कारण व्यतिक्रम है ।

(सम्पूज्य बलदेवो हि)[२] मन्दिरदेवं निमीलितम् ।
चकार सतीर्थवृद्धमुनिना सहितो मुदा ॥
रात्रिकाले गौतमकुण्डे त्रिकालज्ञो मुनिर्महान् ।
अलसरकथां च हलिने श्रावयामास वै पुरा ॥
निःक्षिप्य चान्यवार्त्तायां श्रमनिवारणहेतवे ।

अथ कृपणकथा

न ददाति न चाश्नाति धनं रक्षति जीववत् ।
प्रातरस्मरणीयत्वात् कृपणः कस्य नाप्रियः ॥

तद्यथा—

आसीन्मथुरायां गूढधनो नाम वैश्यः। स च कलावाणिज्यादिभिर्वर्त्तुली-कृतवित्तः परमकृपणो बभूव। एकदा दुर्भिक्षे प्रत्यासन्ने चिन्तितवान्—यदस्मिन् दुर्भिक्षे मम वित्तानि पुत्रकलत्रादिभिः खादितव्यानि। मया च धनशोकेन मर्त्तव्यम्। तन्न भद्रम्। यतः—

एकाकी पुरुषः श्रीमान् धनं तस्य परं सुहृत् ।
अन्ये वा सुहृदः सर्वे धनमूलं कुटुम्बकम् ॥

तदानागतावेक्षां करोमि। परालक्ष्ये स्थाने वित्तानि धारयामीति परामृष्य तथा कृतवान्। ततो दुर्भिक्षे चापतिते परिवारान् सर्वान्नेन विना म्रियमाणान् पश्यन्नपि कस्मैचित् किमपि न ददौ। किञ्च परिवारैः कण्ठगत-प्राणैर्याच्यमानः पद्यमिदं पपाठ—

कृपणस्य धनं प्राणास्तच्च प्रार्थयता मम ।
प्राणाः किन्नैव गृह्यन्ते धनशोकविवर्जिताः ॥

अतस्तस्य पुत्रकलत्रादयः सर्वे विनान्नेनैव मृताः। स्वयं च प्राणमात्रावशेषः परामृष्टवान्—

यन्न पुत्रकलत्रेभ्यो दत्तं वित्तं मयार्जितम् ।
तन्निज प्राणरक्षार्थं कथं भोक्ष्ये[1] निराकुलः ॥

ततः स्वप्राणरक्षार्थमपि वित्तं न विनियुङ्क्ते। उपवासेन दिनानि गमयन्तं तमति दुर्बलं दृष्ट्वा तन्नगरवासिनः कारुणिकाः पुरुषाः केऽपि प्रोचुः—हे कृपण! किं करिष्यसि तेन धनेन यस्मिन् विद्यमानेऽपि निज प्राणान् यास्यतोऽनुमन्यसे? अपि च उचितमेवैतत्। यतः—

अर्जने लभते खेदं क्षतौ शोकं च विन्दति ।
नाप्नोति कृपणो वित्ते दानोपभोगजं सुखम् ।

---

१. हस्तलेख में 'भोक्षे' पाठ है।

अपिच—

दीयते न यदुत्साहात् भुज्यते यन्न कामतः ।
तद्धनं क्षति दुःखार्थं खेदार्थं वा विचिन्वतः[१] ॥

गूढधन उवाच—अये नगरवासिनः पुरुषाः ! किमपि कुरुत । मया प्राणव्ययेनापि धनव्ययो न स्वीक्रियते ।

त ऊचुः—तर्हि राज्ञा चौरेण वा ग्रहीतव्यम् त्वयि विपन्ने तव धनम् ।

गूढधन उवाच—तदन्यस्यैव बुद्धिहीनस्य धनमन्ये गृह्णन्ति । मया स्वकीय धनं गले बद्ध्वा मर्त्तव्यमित्यमिधाय धनपोटलकं गृहीत्वा गङ्गातीरे मर्त्तुं जगाम । तत्र च नाविकं धीवरमुपसर्प्याह—भ्रातर्नाविक ! अमी दुस्त्यजा मम प्राणास्त्यक्तुकामेनापि मया त्यक्तुं न शक्यन्ते । ततस्त्वं परिवार-शोकाकुलं मां गङ्गायां मज्जयित्वा मारय । तदुपाधिना तुभ्यमेकं सुवर्णखण्डं दास्यामि ।

नाविक उवाच—तर्हि देहि सुवर्णखण्डम् । गूढधनः ततः सुवर्णानि प्रकाशयित्वा दर्शयामास । दृष्ट्वा च पुनरब्रवीत्—भ्रातर्नाविक ! सर्वाणि सुवर्णानि दाहविशुद्धानि परस्मै दातुमयोग्यानि । ततः पुण्यार्थमेव मारय माम् ।

नाविकस्तु तानि सुवर्णानि दृष्ट्वा प्रबुद्ध लोभस्तमुवाच—मा दास्यसि मे सुवर्णखण्डम् । पुण्यार्थमेव त्वां हनिष्यामीत्यवादीत् । ततस्तं जले मज्जयित्वा गतप्राणं कृत्वा सुवर्णानि गृहीत्वा स नाविकः कृतार्थो बभूव ।

श्लोकस्तु—

जनयति हृदिखेदं मङ्गलं न प्रसूते
परिहरति यशांसि ग्लानिमाविष्करोति[२] ।
उपकृतिरहितानां सर्वभोगच्युतानां[३]
कृपणकरगतानां सम्पदां दुर्विपाकः ॥

इति कृपणकथा समाप्ता ।

---

१. हस्तलेख में 'विचिन्वितः' पाठ है ।
२. हस्तलेख में 'म्लानिमाविष्करोति' पाठ है ।
३. हस्तलेख में 'भोगश्च्युतानां' पाठ है ।

अथालसकथा

तद्यथा—

उद्योग हेतुरुत्साहः प्राणिधर्मो निगद्यते।
क्रियासु सर्वरुपासु विना तेनालसो भवेत्॥

आसीन्मिथिलायां वीरेश्वरो नाम मन्त्री। स च स्वभावाद्दानशीलः कारुणिकश्च सर्वेभ्यो दुर्गतेभ्योऽनाथेभ्यश्च प्रत्यहमिच्छाभोजनं दापयति। तन्मध्येऽलसेभ्योऽप्यन्नवस्त्रे दापयति। यतः—

दुर्गतीनां च सर्वेषामलसो प्रथमो मतः।
किञ्चिन्न क्षमते कर्त्तुं जाठरेणापि वह्निना॥

अथवा परमसुखस्थानमालस्यम्। यतः—

कुत्रापि तिष्ठति मनः क्वचिदङ्गकानि
नात्मा[1] चिकीर्षित रसैः श्रममभ्युपैति।
आलस्यमात्रवशगस्य नरस्य मन्ये
निद्रासुखं हरति जाठर एव वह्निः॥

ततोऽलसपुरुषाणां तत्रेष्टलाभं श्रुत्वा बहवस्तुन्दपरिमृजास्तत्र वर्त्तुली बभूवुः। यतः—

स्थिति सौकर्यमूलाहि सर्वेषामपि संहतेः।
सजातीनां सुखं दृष्ट्वा के न धावन्ति जन्तवः॥

पश्चादलसानां सुखं दृष्ट्वा धूर्त्ता अपि कृत्रिमालस्यं[2] दर्शयित्वा भोज्यं गृह्णन्ति। तदनन्तरमलसशालायां बहुद्रव्यव्ययं दृष्ट्वा तन्नियोगिपुरुषैः परामृष्टम्। यदक्षमबुद्ध्या करुणया केवलमलसेभ्यः स्वामी वस्तूनि दापयति, कपटेन निरलसा अपि गृह्णन्तीत्यस्माकं प्रमादः। तदस्मद्दोषेण स्वामिधनं वृथा विनष्टं भवतीति वयं प्रत्यवायिनः। यदि भवति, तदालस पुरुषाणां परीक्षा कुर्म इति परामृश्य स्वयमेष्वपि निद्राणेष्वलसपुरुषेष्वलसशालायां ते नियोगि-पुरुषा वह्नि दापयित्वा निरुपयामासुः।

---

१. हस्तलेख में 'नात्म' पाठ है।

२. हस्तलेख में 'कृत्रिममालस्यं' पाठ है।

ततो गृहलग्नं प्रवृद्धमग्निं दृष्ट्वा धूर्ताः सर्वे पलायिताः। पश्चादीषदलसा[1] अपि पलायिताः। चत्वारः पुरुषास्तत्रैव सुप्ताः परस्परमालापयन्ति। एकेन वस्त्रावृतमुखेनोक्तम्—अहो ! कथमयं कोलाहलः ?

द्वितीयेनोक्तम्—दृश्यते यदस्मिन् गृहेऽग्निर्लग्नोऽस्ति।

तृतीयेनोक्तम्—कोऽपि तथा धार्मिको नास्ति य इदानीं जलार्द्रवासोभिः कटैर्वास्मानावृणोति ?

चतुर्थेनोक्तम्—अये वाचाला ! कति वचनानि वक्तुं शक्नुथ ? तूष्णीं न तिष्ठथ ? ततश्चतुर्णामपि तेषामेवं परस्परालापं श्रुत्वा वह्निं च प्रवृद्धमेषामुपरि पतिष्यन्तं दृष्ट्वा नियोगिपुरुषैर्वधभयेन चत्वारोऽप्यलसाः केशेष्वाकृष्य गृहीत्वा गृहाद् बहिः कृताः। पश्चात्तानालोक्य नियोगिभिः पठितम्—

परितेव गतिः स्त्रीणां बालानां जननी गतिः।
नालसानां गतिः काचिल्लोके कारुणिकं विना॥

पश्चात्तेषु चतुर्ष्वलसेषु ततोऽप्यधिकतरं वस्तु मन्त्री दापयामास।

इत्यलसकथा समाप्ता।

अन्वयव्यतिरेकाभ्यामुक्तं वीरस्य लक्षणम्।
अप्युदाहृतयः प्रोक्ताः कथा द्वारा द्वयोरपि॥

इति विद्यापतिकृते भूपरिक्रमणग्रन्थे जनकदेश-
विवृत्यामलसकथा समाप्ता।

मुनि वैराम बाण शशिवत्सरे संख्यके गते
एतासां परीक्षणवृत्तिं चक्रे भूपस्य चाज्ञया।

---

१. हस्तलेख में 'पश्चादीश अलसा' पाठ है।

प्रथम प्रस्थान

नेमिदेश-द्रुपददेश-विवरण

(गणपति) गणेश, साम्ब, श्रीविष्णु, सूर्य और अम्बिका को नमन (प्रणाम) कर, सूनपीठ-निवासी, नैमिषारण्यवासी, शिवसिंह के पिता देवसिंह की आज्ञा (आदेश) से नैमिषभूमि पर भूपरिक्रमण-ग्रन्थ लिखा जा रहा है।

पेंसठ देशों (क्षेत्रों) के वर्णन से युक्त, पेंसठ कथाओं से समन्वित चार खण्डों में विभक्त (प्रबन्ध) विद्यापति कवि कह रहे हैं।

पुराणों, तन्त्रों और काव्यों की तीन मनीषा (बुद्धि) से तथा नवरत्नकृत (रचित) राज-प्रबन्धों को भलीभाँति देखकर, देवसिंह की रुचि (प्रसन्नता) के लिए विविध (नाना) प्रस्थानों (आख्यानों) से समन्वित कथा महान् कवि विद्यापति ने वहाँ कहना प्रारम्भ किया।

अग्निपुराण के वक्ता (वाचक, कहनेवाले) अग्नि से उत्पन्न (उद्भूत) और ऋषि-मण्डल में श्रेष्ठ (सिरमौर) सूत (ऋषि) का वध बलदेव ने किया।

हे राजन् ! (तब) ब्रह्महत्या के पाप से युक्त बलदेव ने, मुनि की आज्ञा (वाक्य) से पाप की शान्ति के लिए, पृथ्वी की प्रदक्षिणा प्रारम्भ की।

पहले (प्रथमतः) नैमिष छोड़कर (छोड़ने के बाद) वे द्रुपददेश गये, जहाँ गंगातीर के बीच महामाया काली विद्यमान थीं। पचास (सौ का आधा) कोश तक फैला हुआ, तीन नगरों (पुरों) और तीन सौ ग्रामों से युक्त (इसकी) राजधानी पृथुका थी।

(वहाँ) श्रृङ्गवेर नामक प्रमुख गाँव में अगण्य-दहन-क्रिया होती थी और हे राजन् ! जहाँ नर-नारी आदि भ्रष्ट नहीं थे। बलदेव ने वहाँ तीन दिन रहकर विविध धनों से पूजन किया।

शातनीपुर में सिद्धेश्वरी भैरवी की सविधि भक्तिपूर्वक पूजा कर, बलदेव कालकोट गये। वहाँ (जहाँ) द्रुपद राजा का शस्त्रागार और सजीव हुतासन (आग्नेय आयुध का आगार, तोपखाना) था। वहाँ तटिनी-तट पर कालिका देवी की पूजा करने के बाद किंशुक-कानन के अन्तिम भाग में वेणुपुर को देखा (दर्शन किया)। वहाँ योगियों के उपास्य नाथदेव पूजित (सेवित) होते हैं।

मालवदेश के राजा भानुमन्त के यहाँ से, काष्टाग्राम-निवासी, होरज-पुर से लाये, भूपाल देश को पवित्र करनेवाले, ईश्वर के समान दीप्तिमान सर्वज्ञ धौम्यमुनि से द्रुपदपुर में बलदेव ने भेंट की (मिलन किया)।

(बलदेव को) प्रवास-काल में चातुर्य-प्राप्ति के लिए गद्य-पद्यमय कौतुक-वाणी (उत्सुकतापूर्ण कथा) कहने को उद्यत हुए।

विल्वकानन-मध्य द्रौपदीहरण नामक स्थान पर कुशासन पर बैठकर रात्रि में महामुनि धौम्य ने, विविध देशों के क्षत्रियों (राजन्य) और वैश्यों के चरित से युक्त, सिद्ध और सम्भाव्य (भूत-भावी) घटनाओं से अन्वित कथा विनोदार्थ और (यात्रा) श्रम-निवारणार्थ बलदेव को सुनाई (कहा)।

त्रिकालज्ञ मुनि बोले—

नीति के आग्रह से, वाणी (वचन) के गुण से, कथारस के कुतूहल से, अथवा वैदग्ध्य हेतु क्या विशुद्धचित्त विद्वान् भी मेरी बातों (प्रबन्ध) की ओर ध्यान नहीं देंगे (नहीं सुनेंगे) ?

हे बलदेव (कामपाल) ! कलियुग में सार्थक अर्थात् सप्तयोजन, राजाओं के आचरण के निर्द्धारक और सम्भाव्य कथा आपके ज्ञान की वृद्धि (विस्तार) के लिए मैं कहता हूँ।

पुरुषों के परीक्षण द्वारा पुरुषों का परिचय मिलता है (पहचाने जाते हैं)। इसलिए पुरुष-परीक्षा नामक यह कथा सबके मन को प्रिय (सर्वप्रिय) है।

समुद्र-पर्यन्त (तक फैले हुए) सहस्रों राजाओं के माथे पर सुशोभित मालाओं के पराग से रंजित चरण-कमलवाले पारावर नामक राजा चन्द्रातपा नामक नगरी में (रहते) थे। उन्हें सर्वाङ्गसुन्दरी सकल गुण-लक्षणों से सम्पूर्ण (युक्त) पद्मावती नामक एक कन्या (पैदा) हुई। उसकी शैशवावस्था को बीतते हुए देखकर वह राजा उस (कन्या) के अनुरूप और अपने कुल के योग्य (उपयुक्त) 'वर' खोजने के लिए (सोचने लगे) चिन्तित हुए। क्योंकि—

कोई भी कन्यावाले पिता, चाहे वे कितने ही कर्मठ, धन-सम्पन्न, स्वस्थ, सुजन और वीतराग क्यों न हों, पुत्री के लिए योग्यायोग्य (उपयुक्त) 'वर' के लिए कथा (प्रसंग) उपस्थित कर, अपनी अभ्यर्थना भंग होने के भय से उनके हृदय में चिन्ता व्याप्त हो जाती है।

इसलिए (तब) क्या किया जाय, यह (प्रश्न) वासुकि नामक ऋषि से (उन्होंने) पूछा।

क्योंकि (कहा गया है)—

इष्ट कर्त्तव्य के अवधारण में कभी भी अकेले निर्णय नहीं करना चाहिए। बुद्धिमानों को भी भ्रमादि दोष की सम्भावना रहती है।

राजा ने कहा—हे मुनि ! मेरी यह पद्मावती नाम की कन्या है। अब इसके लिए किसे 'वर' करूँ, यह विचारकर आप निर्देश दें।

मुनि ने कहा—पुरुष को 'वर' करें।

राजा ने कहा—हे मुनि ! क्या (अपुरुष) जो पुरुष नहीं है, वह भी वर हो सकता है ?

मुनि ने कहा—हे राजा ! पृथ्वी पर बहुत ऐसे पुरुष हैं, जो केवल पुरुषाकार होकर रहते हैं। ऐसे पुरुषाकारों को छोड़कर पुरुष को वरण करें—यही मैं कहता हूँ।

क्योंकि—

पुरुषाकार (बहुत) मिलते हैं, (किन्तु मेरे द्वारा) बताये लक्षणों, चिह्नों से युक्त पुरुष मिलना दुर्लभ (कठिन) है।

जैसे कि—

वही पुरुष पुरुषार्थ से सम्पन्न (युक्त) है, जो वीर हो, जो सुधी (अच्छी बुद्धिवाला) हो, विद्यायुक्त हो। इससे भिन्न सभी केवल पुरुषाकार (पुरुषाभास) हैं, पुच्छविहीन पशु हैं।

राजा ने (पूछा) कहा—तब वीर आदि कैसे पहचाने जायेंगे ?

मुनि ने कहा—

शूरता, विवेक और उत्साह से विभूषित (पुरुष) वीर होते हैं। अपने माता-पिता को अलंकृत करने के लिए वे किसी कुल में जन्म लेते हैं। कृपणता (कातरता) से रहित होना शूरता है। हित और अहित को समझने की बुद्धि विवेक है। काम करने की प्रवृत्ति उत्साह है। इन्हीं तीनों गुणों से युक्त वीर होते हैं।

वे चार प्रकार के होते हैं—दानवीर, दयावीर, युद्धवीर और सत्यवीर।

जैसे कि—

हरिश्चन्द्र दानवीर थे, राजा शिवि दयावीर थे, पार्थ (अर्जुन) युद्धवीर थे (और) युधिष्ठिर सत्यवीर थे।

राजा ने कहा—हे मुनि ! वे लोग अन्य युग के पुरुष थे। इस कलियुग में शिक्षा के लिए वे लोग उपमानता (उदाहरण का दर्जा) नहीं प्राप्त कर सकते हैं।

कारण है कि—

कृतयुग (सत्ययुग) में उत्पन्न व्यक्ति का चरित्र कलियुग में शिक्षा का हेतु (कारण) नहीं बन सकता है। समयजन्य भेद से वे दृष्टान्त क्रियार्थ घटित नहीं होते (उपमानता नहीं प्राप्त करते) हैं। अब कलिकाल (कलियुग) में उत्पन्न लोगों में न वह बुद्धि है, न शरीर में वैसा तेज है और न उस प्रकार का सत्य ही है।

इसलिए कलियुग में उत्पन्न पुरुषों की ही कथाओं के द्वारा हमें वीर का परिचय करावें।

मुनि ने कहा—

सत्ययुग, त्रेतायुग और द्वापरयुग के राजवंशों की कथा तो प्राचीन (पूर्ववर्त्ती) कवियों (कथाकारों) ने कही ही है। मैं कलियुग की (कथा) कहता हूँ।

दानवीर-कथा

उनमें (तबतक) पहले दानवीर-कथा उपस्थित की जाती है। कारण—

दानवीर के नाम का स्मरण करने से, उच्चारण करने से और यत्न-पूर्वक सुनने से भी सर्वत्र शुभ (मंगल) होता है।

उज्जयिनी नामक राजधानी थी। वहाँ विक्रमादित्य नामक राजा हुए। एक बार सिंहासन पर बैठे हुए उन्होंने किसी वैतालिक द्वारा पढ़ा जाता हुआ एक श्लोक सुना।

जैसे कि—

जिनकी स्तुति (गुणगान) सन्तुष्ट-चित्त ब्राह्मणों द्वारा, मनोरथ पूर्ण होने से आह्लादित हृदयवाले वन्दियों द्वारा, अभिलाषा सिद्ध हुए नौकरों द्वारा, आधिपत्य स्वीकार करनेवाले देश-देश के राजाओं के द्वारा, कृतार्थ हुए विद्वानों द्वारा (और) सुवर्ण से पुरस्कृत विविध दिशाओं के योद्धाओं द्वारा, नित्य होती रहती है, उस दानवीर राजा वडाह (बलाह) की जय हो।

इसके बाद राजा ने पढ़ते हुए वैतालिक से (कहा) पूछा—

अरे वैतालिक! तुम्हारे राजा बलाह कौन हैं?

किस दर्प से उनके उत्कर्ष का मेरे सामने बखान कर रहे हो?

वैतालिक ने कहा—हे देव! मुझ वैतालिक की तो यह वृत्ति ही है कि वीरों का यश सभी दिशाओं में फैलाता (हूँ) रहूँ। क्योंकि—

अपने वचन द्वारा वैतालिक शूरों को (लड़ाता) युद्ध के लिए उसकाता (प्रेरित करता) है, मदान्ध को (आँखें खोलकर) चेतावनी देता है, कायरों से (दुर्गुण) कुत्सितता मिटाता है। राजाओं के समक्ष उनके विपक्षियों की भी प्रशंसा (गुणगान) करता है।

वैतालिक मरण को वरण कर सकता है, किन्तु कृपणता (संकीर्ण भाव) को नहीं।

इसीलिए तो शूरगण मुझे धन से परितुष्ट करते हैं और मैं उनके अंकुरित यश को प्रत्येक दिशा में पल्लवित करता रहता हूँ। श्रीमान् (आप) को यदि वह सुनने से अमर्ष (असह्य) हो तो उससे अधिक अथवा उसी प्रकार का पौरुष दिखावें। इसके लिए क्रोधित क्यों होते हैं?

राजा ने (कहा) पूछा—उनका (वह) पौरुष क्या है?

वैतालिक ने कहा— उस बलाह नामक राजा के (दरवाजे) फाटक पर मन्त्रिगण हर रात सोने का एक घर बना देते हैं। प्रतिदिन उसे काटकर वह सोने को ब्राह्मणों और दरिद्रों में वितरित करता है। उस दान से सन्तुष्ट होकर वे सभी उनकी कीर्तिगाथा सर्वत्र गाते रहते हैं।

राजा ने कहा—वैतालिक ! क्या यह सच है ?

वैतालिक ने कहा—हे राजा ! असत्य कौन (कहेगा) कहता है ?

यदि आपको विश्वास न हो तो अपने गुप्तचर द्वारा इसका निरूपण करवा लें।

राजा ने कहा—वैतालिक ! जबतक इसका निरूपण करता हूँ तबतक तुम इसी नगर में ठहरो। यदि तुम सत्यवादी (सिद्ध) हुए तो रत्नों से मैं तुम्हारी पूजा करूँगा। यह कहकर राजा ने वैतालिक को बाहर भेज दिया।

और, राजा अन्तःपुर जाकर एकान्त में सोचने लगे—बलाह का चरित्र तो बड़ा ही आश्चर्यजनक है।

अथवा विधाता की रचना (प्रबन्ध) में क्या असम्भव है ? इसलिए जाकर इस कुतूहल को देखूँ। यह विचारकर (वे) राज्य-भार सचिवों पर सौंपकर, अग्नि और कोकिल नामक दो वेतालों को बुलाकर, उनके कन्धों पर चढ़कर वडाह की राजधानी गये। वहाँ महायोद्धा का वेष धारण कर राजा वडाह का दर्शन कर बोले—देव ! समर में जिसके समान कोई दूसरा नहीं है (अद्वितीय), उस विक्रमादित्य राजा का मैं द्वारपाल (द्वार-रक्षक) हूँ। आपकी कीर्त्ति सुनकर आपकी सेवा करने के उद्देश्य से आया हूँ। यह कहकर उसने (राजा को) प्रणाम किया।

राजा ने कहा—अरे द्वारपाल ! तुम तो बहुत बड़े महाराजा के द्वारपाल हो, इसलिए मेरे भी द्वार पर ही रहो।

तब से (उस दिन से) विक्रमादित्य द्वार पर रहते हुए परम अद्भुत कृत्य को नित्य ही सोने का घर निर्मित होना, उस सोने का वितरण होना, देखते थे।

इसके बाद वे सोचने लगे—इसका सोने का घर कहाँ से आता है ? मुझे क्यों नहीं होता है ? जो कार्य (व्यापार) पुरुष द्वारा साध्य (सम्भव) है, उससे किसी (पुरुष) को उदासीन नहीं होना चाहिए। अब इसका कारण-निरूपण करना चाहिए। (वे) उस कारण के जिज्ञासु बन गये।

उन्होंने एक बार रात के घोर निशा-भाग में, नगर के सभी जनों, राज-परिजनों के सो जाने पर राजमहल से अकेले निकलकर नगर से बाहर होते हुए वडाह को देखा। यह देखकर वे चुपचाप, उनसे अलक्षित, उनके पीछे-पीछे रवाना हुए (पीछा किया)। वडाह नदी-तट पर स्थित अत्यन्त भयानक श्मशान-क्षेत्र में पहुँचे। वह स्थान नाचते हुए वेतालों के पाँवों के पटकने से

डरी हुई (भयभीत) डाकिनी के डमरू के डंकार से, हजारों गीदड़ों (शृगालों) के चीत्कार (भौंकने) से, और प्रचण्ड (उन्मत्त) राक्षसी खेल से, क्रूर लगने-वाले नरमुण्डों तथा राख-मिश्रित चिता की लकड़ी (जराठी) से चित्रित होने से भयानक (लगता) था। वहाँ नदी में स्नान करने के बाद उन्हें भैरव-पुरुषों ने मानव-चर्म की डोरी (रस्सी) से बाँधकर धधकती हुई आग की ज्वाला पर अत्यन्त तप्त तेल से भरे हुए कड़ाह[1] में फेंक दिया। (उन्होंने वहाँ) अत्यन्त वेदना का अनुभव करते हुए महाकष्ट से प्राण-त्याग किया। (मर जाने पर) उसके तेल में सुसिद्ध मांस को भगवती चामुण्डा ने प्रत्यक्ष होकर खाया। मांस खा लेने पर भगवती ने परम सन्तुष्ट होकर उनकी अस्थियों को अमृत से सिंचित (सिक्त) कर उनको पुनः वैसा ही बना दिया। जिलाये हुए वडाह ने पुनः उठकर भगवती को प्रणाम किया। उन्होंने वर माँगा।

वडाह ने कहा—हे भगवती ! जो पुरुष दानी-रूप से प्रसिद्ध है उसके लिए, याचकों के मनोरथ पूर्ण करने की अशक्ति (असमर्थता) मरण से भी बढ़कर है। इसीलिए तो मैंने मृत्यु को अंगीकार कर याचकों के मनोरथ को पूर्ण करने की कामना से, भगवती की अपने मांस से पूजा की है। अतः हे माता ! मेरी कामना को पूर्ण करें।

देवी ने कहा—हे वडाह ! सुबह में तुम्हारे दरवाजे पर, पहले की ही भाँति सोने का घर हो जायगा। तब देवी का वरदान प्राप्त कर कृतार्थ राजा वडाह अपने महल में वापस आ गया।

यह सब देखकर विक्रमादित्य सोचने लगे—वैतालिक ने ठीक ही कहा। यथार्थ में यह वडाह दानवीर है; क्योंकि दान देने के लिए नित्य ही यह प्राणोत्सर्ग करके धन का अर्जन करता है। दयामयी होकर भी भगवती क्यों नहीं एक ही बार के प्राण-परित्याग करने के साहस से सन्तुष्ट होकर, इसे कृतार्थ कर देती हैं? अब अगली रात तो (आये) हो। जो उचित है, वही करूँगा—यह विचारकर (उसने) राजद्वार पर जाकर (आकर) अपने अधिकार को विभूषित किया (काम में लग गये)।

अगली रात सचिव, सामन्त और भृत्यों से आवृत वडाह जबतक एकान्त की अपेक्षा करते ही थे, तबतक प्रदोष (सन्ध्या) के समय ही, नगर के लोग सोये भी नहीं थे तभी, बिना किसी को साथ लिये (एकाकी) विक्रमादित्य उस स्थान (प्रदेश) पर जाकर, उस नदी में स्नान कर उसी खौलते हुए तेल से भरे कड़ाह में (झंप से) कूद पड़े। कच्चे मांस के संयोग से तप्त तेल के कड़-कड़ाने की आवाज से भगवती ने वहाँ आकर उसके मांस को खाया और हड्डियों को अमृत से सिक्त किया। जीकर पुनः उठे हुए विक्रमादित्य को वडाह के भ्रम से यावत् भगवती वरदान देकर अनुगृहीत करना चाहती थीं तावत्

१. लोहे का एक बहुत बड़ा बर्तन, जो काफी गहरा होता है।

वह पुनः कड़ाह में झंप से (कूदा) गिरा। पुनः भगवती ने उसके मांस को खाया। इस प्रकार बार-बार जीवित होकर उठते हुए पुनः धम्म से कड़ाह में गिरते हुए सात्त्विक स्वभाव से भगवती ने लक्षित किया कि यह विक्रमादित्य है और वे बोलीं।

देवी ने कहा—अरे विक्रमादित्य! मैं तो तुझपर प्रसन्न ही हूँ तब आठों सिद्धि का लाभ करके भी तुम इतना साहस (किस निमित्त से) क्यों करते हो? मैं तो न तुम्हारे मांस से और न उसके मांस से तृप्त होती हूँ। किन्तु पुरुष के साहस की परीक्षा करने के निमित्त कृत्रिम भूख और कृत्रिम तृप्ति दिखलाती हूँ। अभी मैं तुम्हारे साहस से संतुष्ट हूँ। वर माँगो।

इसके बाद विक्रमादित्य ने प्रणाम कर वरदान माँगा।

विक्रमादित्य बोले– हे देवि! आप भक्तवत्सला हैं। हे जगन्माता, वडाह के प्रति दयालु होकर मैंने आपकी आराधना की है। इसलिए मरण-साहस किये बिना ही प्रतिदिन वडाह के दरवाजे पर सोने का घर (करवा दें) हो जाया करे।

भगवती ने कहा—ऐसा ही हो। यह वरदान पाकर विक्रमादित्य अपने राज्य चले गये। यथार्थ वचन (कहनेवाले) वैतालिक को बुलाकर रत्न, घोड़ा, वस्त्र, हाथी आदि से उसकी पूजा की।

इधर नगरवासियों के सो जाने पर निकले निशाभाग रात्रि में वडाह जब श्मशान (क्षेत्र)-स्थान पहुँचे तब वहाँ कुछ भी नहीं देखा। किन्तु (केवल) आकाशवाणी सुनी—अरे वडाह! विक्रमादित्य ने तुम्हारे खेद (कष्ट) को दूर कर दिया है। इस कथा को विचारकर भी स्पष्ट अर्थ का निर्धारण नहीं कर सके और सुबह याचकों को क्या दूँगा—इस चिन्ता से व्याकुल लौटकर घर आकर पलंग पर सो जाने पर भी उन्हें नींद नहीं आई। तन्द्रा से घिरे उन्हें सुबह ही द्वारपालों ने जगाया। पहले की भाँति ही दरवाजे पर सोने का घर देखकर वे कृतार्थ हो गये।

प्रकरण-बल से वे आकाशवाणी का तात्पर्य समझ गये (कि)—विक्रमादित्य को कृपा से मुझे बार-बार मरण के आयास को अपेक्षा के बिना ही यह सिद्धि मिल (हो) गयी है। वैतालिक ने निर्द्धारित अर्थ को भी उनकी सभा में आकर पुनरुक्त (दोहराया) किया। इसीलिए तो—

पुरुषों को गणना में सर्वप्रथम उल्लेख्य राजा विक्रमकेशरी हैं, जिनकी दया दानवीर के विषय में भी कल्पलता की भाँति सिद्ध हुई।

(इति) विद्यापति कवि-विरचित भूपरिक्रमण-ग्रन्थ की दानवीर-कथा समाप्त हुई।

द्वितीय प्रस्थान

ब्रह्मावर्त्त-विवरण

दानवीर-कथा सुनकर बलदेव प्रसन्न हुए और सुमुनि से फिर बोले—अब दूसरी कथा कहिए।

हार-भूमि को (छोड़ने) पार करने के बाद वे सात योजन की दूरी पर स्थित ब्रह्मावर्त्त पहुँचे (आये)। उसके बाद त्रिकालज्ञ मुनिवर को साथ लेकर हलायुध अन्तर्वेद के बीच उपस्थित हुए।

वहाँ बली (बलराम) को उनसे कलियुग के संयोग और सम्भाव्य कथाएँ सुनने की इच्छा जाग्रत् हुई।

कल्याणी नदी के पास विस्तीर्ण (फैली हुई) पुरी के बीच प्रसन्न-चित्त होकर पाँच दिनों तक (उन्होंने) तीर्थयात्रा की।

(फिर) महाहली (महाबली) परिहार-कानन पहुँचे। (वहाँ) नलिका नदी के किनारे, कालेश्वर गुहा के अन्दर कालेश्वर की तीन बार प्रदक्षिणा कर यत्नपूर्वक अच्छी तरह पूजन कर बलदेव वाल्मीकि-आश्रम पहुँचे (गये)। वहाँ (जहाँ) अहल्याकूप है और गहन पिलु-कानन में सीता-प्रसव-स्थान है, जो लोक में 'सोरि' नाम से प्रसिद्ध है।

(महाबली) भूपाल (बलदेव) कल्याणी-सङ्गम में स्नान कर विविध प्रकार के दान कर, वाल्मीकि-डिच गये। वहाँ वे कुश-लव-योधन-स्थान को देखकर प्रसन्न हुए। वहीं कल्याणी नदी के किनारे (तटपर) कुलपिपुर नामक महापातकनाशिनी पंचक्रोशी भूमि है, जहाँ (अनेक) हजारों राजपुत्र (रहते) हैं।

त्रिकालज्ञ मुनि को आगे किये हुए (इन स्थानों को) देखकर कामपाल ने पुनः सौरिस्थान जाकर पाचवीं रात व्यतीत की।

कल्याणपुर के राजा ब्रह्मदत्त नामक महीपति थे। उन्होंने बलदेव की तीर्थयात्रा (के बारे में) सुनकर नगर से पैदल चलकर आदर के साथ (बलदेव की) बन्दना की।

बारह योजन तक फैले हुए ब्रह्मावर्त्त का निरूपण हुआ। हे राजन्! अब प्रसंगवश ब्रह्मावर्त्तद्वय का निरूपण किया जाता है।

वहाँ (जहाँ) आमोद-कानन और काम-कानन है, वहीं स्वायम्भुव मनु का स्थान और सरस्वती-कुण्ड है।

अधर्मियों (पापियों) के शिरोमणि वेणभूप का वास (हुआ) था, जिसके राज्य में, हे राजन्! किसी प्रकार का विचार ही नहीं (हुआ) था। (इसी अविचार के कारण) प्राचीन काल में जातियों का संकर और संसृष्टि निरूपित हुई थी।

अन्यायों को देखकर मुनियों ने वेणराजा को शाप दिया, जिसके पुण्य के अंश से पृथु नामक राजा उत्पन्न हुए और मुनि के शाप के प्रभाव के कारण पापांश से म्लेच्छों की उत्पत्ति हुई। वास करने के लिए वे लोग सागर में स्थित उपद्वीपों में चले गये। मुनि के भय से एक दल (हापान) सिंहलद्वीप भाग गया।

यह लघु ब्रह्मावर्त्त देश पाँच नगरों से युक्त पृथ्वी पर विख्यात है। वे हैं—कर्णपुर, कल्याणपुर, चतुर्वेदपुर, खर्जरीपुर और लोलपुर। वहाँ (जहाँ) दीर्घश्रवा नामक राजा हुए। वहीं पाँच सौ गाँव हैं और (भूमि) धान्यादि को लेकर पूर्ण उपजाऊ है।

ब्रह्मदेव महीपति बलदेव को ब्रह्मावर्त्त का वृत्तान्त सुनाकर कल्याणपुर चले गये। इसके बाद रात के समय सौरिस्थान में महामुनि ने बलदेव को (पहले) रमणीय दयावीर-कथा सुनाई।

दयावीर-कथा

दयालु पुरुष श्रेष्ठ (होते) हैं, सभी जन्तुओं का उपकार करनेवाले होते हैं। उनकी कीर्त्ति के वर्णन (गुणानुवाद)-मात्र से कल्याण होता है।

यमुना नदी के तट पर (किनारे) योगिनीपुर नामक नगर है। वहाँ अलावदीन नामक यवनराज हुआ। वह एक समय किसी कारण से महिमासाहि नामक सेनापति (सेनानी) पर क्रोधित हो गया। वह अपने यवन मालिक को क्रोधित और प्राण-ग्राहक समझकर सोचने लगा—अमर्ष से युक्त राजा कभी भी विश्वसनीय नहीं होता।

कारण—

राजा, दुष्ट और सर्प का कहीं भी विश्वास नहीं करना चाहिए। वे (आदर) प्रेम दिखलाते हुए भी अतर्कित भाव से प्राणघात (नाश) कर देते हैं।

इसलिए अभी जबतक बाँधा (पकड़ाया) नहीं गया हूँ तभी यहाँ से कहीं जाकर अपने प्राण की रक्षा करूँ—यह विचारकर वह वहाँ से भाग गया। भागते हुए भी उसने सोचा कि सपरिवार कहीं दूर जाना भी संभव नहीं है। परिवार को छोड़कर भागना भी उचित नहीं है। क्योंकि—

अपने जीवन के लिए जो परिवार छोड़कर चला जाय, परलोक गये हुए ऐसे लोगों के जीवन से क्या फल ? (जीना-मरना समान है।)

इसलिए यहीं दयावीर हम्मीरदेव के आश्रय में रहूँ—यह विचारकर उस यवन ने हम्मीरदेव के पास जाकर निवेदन किया। महिमासाहि बोला—हे देव! विना अपराध के ही (निरपराध) मारने के लिए उद्यत (अपने) मालिक के भय से मैं आपकी शरण में आया हूँ। यदि मेरी रक्षा कर सकें तो विश्वास दें (दिलाएँ)। नहीं तो मैं (यहाँ से) अन्यत्र चला जाऊँ।

राजा ने कहा—यवन! मेरी शरण में आये हुए (तुम्हें) मेरे जीते-जी (जबतक मैं जीवित हूँ) यम भी तुम्हें पराभूत (अपमानित) नहीं कर सकते हैं, फिर यवनराज क्या ? इसलिए निर्भय (होकर) रहो।

तब उस राजा के वचन से (कहने पर) यवन राजा का वह सचिव उस रणस्तम्भ नामक किले में निश्शंक होकर रहने लगा।

क्रमशः उसे वहाँ अवस्थित जानकर यवनराज ने अत्यन्त क्रोधित हो, हाथी, घोड़ा और पैदल सेना के पदाघात से पृथ्वी को कँपाते हुए, (डंके की चोट) आवाज से दिशाओं को शब्दायमान करते हुए, कुछ ही दिनों में रास्ते को पारकर, किले के द्वार पर पहुँचकर शरों की सघन वर्षा से प्रलय का दृश्य दिखलाया। हम्मीरदेव ने भी अपने दुर्ग को परिखा को गम्भीर मेखला से चारों ओर से घेरकर

भाले के नोंक द्वारा प्राकार के शिखर को दन्तुरित कर, पताके से द्वारश्री को चकमकाकर, प्रत्यञ्चा (धनुष की डोरी) के आघात से कर्णकटु बाणों (के जाल) से गगन-मण्डल को अन्धा कर दिया।

प्रथम युद्ध के पश्चात् यवनराज द्वारा हम्मीरदेव के पास दूत भेजा गया। दूत ने कहा—हे राजा हम्मीर ! श्रीमान् यवनाधिराज आपको आदेश देते हैं कि मेरे द्रोही महिमासाहि का परित्याग करके मुझे दें। यदि इसे नहीं देंगे तो कल सुबह ही आपके किले को घोड़ों की टापों (खुरों) से चूर्ण कर महिमासाहि के साथ आप (तुम) को यमपुरी भेजूँगा (ले जाऊँगा)।

हम्मीरदेव बोले—रे दूत ! तुम अवध्य हो। तुझे मैं क्या करूँ? इसका उत्तर तुम्हारे स्वामी (मालिक) को तलवार की धार से दूँगा, वचन से नहीं। मेरी शरण में आये हुए को यमराज भी विपक्ष-दृष्टि से नहीं देख सकते हैं, फिर यवनराज की क्या बात ?

तब फटकारे (दुतकारे) हुए दूत के वापस जाने पर यवनराज क्रोधित होकर युद्ध के लिए समुद्यत हो गया। इस तरह तीन वर्ष तक दोनों दलों में युद्ध होता रहा और प्रतिदिन दोनों दल के योद्धागण परस्पर सम्मुख होकर विमुख होते थे, प्रहार करनेवाले हार जाते थे और मारनेवाले खुद मारे जाते थे। पीछे यवनों की सेना में योद्धाओं की आधी संख्या बचने से, किले पर अधिकार करना असम्भव जानकर यवनराज ने लौटकर अपने नगर जाने की इच्छा की। उन्हें प्रयत्नों में विफल देखकर, रायमल्ल और रामपाल नामक हम्मीरदेव के दो दुष्ट सचिव आकर यवनराज से मिल गये।

वे दोनों बोले—हे यवनराज ! आप कहीं नहीं जायँ। किले में अकाल पड़ गया है। हम दोनों किले के (रहस्य को जानते हैं) मर्मज्ञ हैं। कल या परसों (हम) किले को दखल करवा देंगे। तब दोनों दुष्ट सचिवों को आगे कर यवनराज द्वारा किले के द्वारों को घेर लिया गया।

इस संकट को देखकर हम्मीरदेव ने अपने सैनिकों से कहा—रे रे जाजमदेव प्रभृति योद्धागण ! सीमित सेना रहने पर भी मैं शरण में आये हुओं (शरणागत) के प्रति दयाभाव के कारण बहुत बड़ी सेना रखनेवाले यवन-राज से (के साथ) भी युद्ध करूँगा। यह काम नीतिज्ञ के मत के प्रतिकूल है। इसलिए तुमलोग दुर्ग से बाहर किसी अन्य स्थान पर चले जाओ।

उन लोगों ने कहा—देव ! आप निरपराध राजा यवन के प्रति दयाभाव से संग्राम में मरण को वरण कर रहे हैं। हमलोग आपके जीविका-भोगी रहते हुए भी अभी कैसे अपने स्वामी को छोड़ नीच पुरुष के कर्म का अनुसरण करें ? किन्तु (अतः) कल सुबह ही आपके शत्रु को मारकर आपके मनोरथ को सिद्ध कर देंगे। हाँ, इस अभागे यवन को अन्यत्र भेज दिया जाय। इससे रक्षणीय की रक्षा होगी। उसकी रक्षा के निमित्त ही तो यह आरम्भ है।

यवन ने कहा—देव ! मुझ एक विदेशी की रक्षा के लिए पुत्र-कलत्र-सहित आप क्यों अपने राज्य का विनाश करेंगे ? इसलिए मेरा परित्याग कर (सौंप) दें । राजा ने कहा—ऐसा मत कहिए । क्योंकि—

इस नाशवान् भौतिक शरीर से चिरस्थायी यश यदि प्राप्त हो (मिलनेवाला हो) तो उसे छोड़ने की इच्छा कौन करेगा ?

किन्तु यदि मन करता हो तो तुझे भय-रहित स्थान में भेज दूँ ।

यवन ने कहा—हे राजन् ! ऐसा मत कहिए । सबसे पहले मुझे ही चाहिए कि शत्रु के मस्तक पर (खड्ग से) प्रहार करूँ । किन्तु, स्त्रियों को बाहर कर दिया जाय ।

स्त्रियों ने कहा—हमलोगों के स्वामी शरण में आये हुए की रक्षा के निमित्त युद्ध को स्वीकार कर स्वर्गयात्रा का महोत्सव मनाते हैं । उनके विना हम सब पृथ्वी पर कैसे रहेंगी ? क्योंकि—

जिस तरह वृक्ष के विना लता जीवित नहीं रह सकती है, उसी तरह स्वामी के विना स्त्रियाँ भी नहीं जीयेंगी । साध्वी स्त्रियों के प्राण इस संसार में पति के प्राण के अनुगामी होते हैं ।

इसलिए हम सब भी वीरों की पत्नियों की तरह अग्नि-प्रवेश करेंगी । इस प्रकार से—

महाराज हम्मीरदेव जब दूसरों के लिए अपने प्राण-उत्सर्ग कर रहे थे तब योद्धाओं ने युद्ध को अंगीकार किया और स्त्रियों ने अग्नि को पसन्द किया ।

तब प्रातःकाल जब युद्ध आरम्भ हुआ तब हम्मीरदेव तेज घोड़े पर चढ़कर अपने योद्धाओं को साथ लेकर पराक्रम (पूर्वक) करते हुए दुर्ग (किले) से बाहर निकलकर तलवार की धार के प्रवाह से विपक्ष के घोड़ों को गिराते हुए, हाथियों को मारते हुए, (पदल सेनाओं को यमपुरी भेजते हुए), भय उत्पन्न करते हुए, कटे हुए मस्तकों को नचाते हुए, रक्त-धारा-प्रवाह से पृथ्वी को रँगकर, शर से सर्वांग शरीर खण्ड-खण्ड (क्षत-विक्षत) होकर, घोड़े की पीठ पर प्राण-त्याग कर, सामने संग्राम-भूमि में गिर पड़े और सूर्य-मण्डल को भेदते हुए, स्वर्गीय हुए ।

कहा गया है—

अनुपम गुणों से समन्वित वैसे प्रासाद, वैसी प्रसन्न तरुणी (स्त्रियाँ), धन से परिपूर्ण वैसा राज्य, वैसे हाथी, वैसे घोड़े, जिनमें से किसी एक को भी दूसरे के लिए (निमित्त) त्याग करना सम्भव नहीं होता है, (उन) सबों को त्यागकर हाय ! हम्मीरदेव, युद्ध में गिरे ।

गद्य-पद्य द्वारा विस्तृत कर कवि विद्यापति ने भूपालक राजा देवसिंह को सुनाया ।

इस तरह विद्यापति कवि द्वारा विरचित भूपरिक्रमण में ब्रह्मावर्त्त के प्रसंग में दयावीर-कथा समाप्त हुई ।

तृतीय प्रस्थान

यज्ञभूमि-विवरण

इसके बाद त्रिकालज्ञ मुनि को साथ लेकर कामपाल ब्रह्मावर्त्त को छोड़कर (निकलकर) यज्ञभूमि गये (पहुँचे)।

कर्णपुर को छोड़कर, हस्तिकर्णपुर और द्विजभूमि को छोड़कर (छोड़ते हुए) हली प्रयाग पहुँचे।

तीर्थराज महाक्षेत्र तीन नदियों से युक्त (समन्वित) है । हे राजन् ! श्वेत, कृष्ण और रक्त (तीनों जलधाराएँ) वेणीरूप में अवस्थित हैं।

बालचन्द्र से आरम्भ कर प्रतिष्ठानपुर तक (पर्यन्त) नीलकण्ठपुर पाँच योजन में फैला हुआ है । इसके बीच ही पंचक्रोश है (जो) कलियुग में कामनाओं की सिद्धि देनेवाला है। (वहीं) सोमेश्वर, दशाश्वमेध और शूलेश स्थान हैं। (राजा) बलदेव ने सर्वत्र नियमपूर्वक यात्रा की।

प्रयाग में त्रिकालज्ञ के साथ चार दिनों तक बलदेव ने नाना प्रकार के कौतुक से युक्त वास किया (ठहरे)। और, भरद्वाज-आश्रम में दो दिनों तक वास किया।

(हली) बलदेव ने हजार ब्राह्मणों को भोजन कराया। बहुत मान-पुरस्सर महाप्रयाग की प्रदक्षिणा कर प्रयाग के उत्तर भाग में एक योजन की दूरी पर अवस्थित मलका नामक ग्राम बलदेन के द्वारा देखा गया, जहाँ आम्लकी के अनेक सुन्दर (आकर्षक) कानन हैं। फिर, मधुग्राम में बलदेव ने यथेच्छ मधुपान किया, जिस (ग्राम) के निकट गंगा नदी पूर्ण वेगपूर्वक बहती है। हे राजन् ! कलियुग में (वहीं) मुकुन्द नामक ब्रह्मचारी (रहते) थे।

मधुग्राम के समीप फतेपुर गाँव के बीच रारक नामक विपिन में जिनका सिद्धिकुण्ड में वास था। वही ब्रह्मचारी शूलकण्ठेश्वर के आगे कामनासिधारा पर प्राणत्याग किया।

इसके बाद कामपाल त्रिकालज्ञ मुनि के साथ पश्चिम भाग में स्थित चन्द्रपुर गये, जहाँ प्राचीन काल में राजयक्ष्मा रोग के भय से शशी ने तपस्या की। हे राजन् ! इसी कारण से यह चन्द्रपुर नाम से जाना गया (ख्यात हुआ)।

हे राजा ! चन्द्रपुर के समीप, मय नामक दैत्य द्वारा निर्मित मयग्राम है, जहाँ प्राचीन समय में किला था। इसी मय दैत्य ने हस्तिनापुर से महापाषाण लाकर राजा युधिष्ठिर को अर्पित किया। (इस सम्बन्ध में) यदि देवसिंह की

विशेष जिज्ञासा हो तो मयग्राम का वृत्तान्त सरित्सागर पुस्तक में देखा जा सकता है।

प्रयाग के दक्षिण-भाग में आधा योजन हटकर करेल नामक एक अत्यन्त सुन्दर महाग्राम है। तीर्थराज के दक्षिण में चकोरनयनी ग्राम है, जहाँ चकोर-चकोरी पक्षी की कथा (प्रख्यात) हुई।

(वहाँ) अरेल ग्राम और सेराज ग्राम भी हैं, जहाँ (मृण्मय) मिट्टी का किला है।

महाप्रयाग की प्रदक्षिणा कर वे भरद्वाज-आश्रम में गये। कुसुमकरालि राजधानी से निकलकर (राजा बलदेव) जन्मेजय के ससुरवंशी बलराज के पास पहुँचे (भेंट की)।

तब रात में त्रिकालज्ञ मुनि ने पुराणों की शैली में बलदेव को शुभ (दायक) युद्धवीर-कथा कही।

युद्धवीर-कथा

ऐसा कहा गया है—

युद्धवीर-कथा सुनकर कायर शूरता प्राप्त करता है (वीर बन जाता है), आलसी व्यक्ति सक्रिय (उद्यमी) हो जाता है और (सामान्य) मानव जय प्राप्त करता है।

मिथिला में कर्णाट-कुल में उत्पन्न नान्यदेव नामक राजा के मल्लदेव नामक कुमार थे। स्वभाव से ही वह सिंह के सदृश पराक्रम-रसिक थे। मन-ही-मन उन्होंने सोचा कि मैं युवराज होकर भी पिता द्वारा उपार्जित राज्य में सुख का अनुभव करता हूँ, यह मेरा पौरुष नहीं है। क्योंकि—

(कायर) कातर, शिशु और स्त्रियाँ दूसरों के आश्रय में जीवित रहते हैं। सिंह और सत्पुरुष अपने ही दर्प (मान) पर जीनेवाले (होते) हैं।

अपने बाहुबल से उपार्जित धन के बिना तो पितृभक्ति भी सम्भव नहीं होती है। कहा भी गया है कि—

जिसका अर्जित भोजन करें, जिसके यश से आराध्य हों (जिसका यश सुनें), ऐसे ही पुत्र से पिता पुत्रवान् होता है, चाहे उसे अनेक पुत्र क्यों न हों।

इसलिए कहीं जाकर निज बाहुबल से पौरुष का अर्जन करूँ—यह विचार कर वह कुमार कान्यकुब्ज नामक जनपद गये। वहाँ जयचन्द्र नामक काशीश्वर राजा का सैनिक-परिपाटी (रीति) से दर्शन किया। उस राजा ने उनका सत्कार कर उन्हें अपना सहचर बना लिया। कुमार भी उस राजा की सेवा में लगे हुए क्रम-क्रम से अधिक सम्मान के पात्र हुए। (किन्तु) एक समय उन्होंने समादर में वैषम्य (कमी) का अनुभव किया। क्योंकि—

गुण की मात्रा अल्प भी रहे, किन्तु यदि वह वस्तु दुर्लभ हो तो राजाओं को उसके प्रति आदर-भाव रहता है, लेकिन प्रचुर (अधिक) गुणयुक्त वस्तु भी यदि सुख से (सुलभ) प्राप्त हो तो उसके प्रति निश्चय ही अनादर का भाव होता है।

इसके बाद, उस कुमार (युवराज) ने विचार किया—तृष्णा से भरे हुए व्यक्ति (लोभी) का प्राण है धन, आग का प्राण है ईन्धन, कामी जनों का प्राण है स्त्री और मनस्वी जनों का प्राण है मान। तब (उन्होंने) राजा से कहा—

हे देव ! आपका प्रभुधर्म (राजधर्म) सुनकर मैं यहाँ आया हूँ। अब मैं अन्यत्र जाऊँगा।

राजा ने कहा—कुमार! आपके उद्वेग का क्या कारण है, जिससे आप अन्यत्र जायँगे ?

मल्लदेव ने कहा—देव! आपका आदर-भाव क्रमिक रूप से शिथिल होता जायगा, इसी आशंका से अब मैं यहाँ से अन्यत्र जाना चाहता हूँ।

राजा ने कहा—यह (आप) कैसे जानते हैं ?

मल्लदेव ने कहा—क्योंकि मेरे जैसे लोगों का आदर तो शूरता को लेकर होता है। शूरता तो केवल वाग्युद्ध से जनाई नहीं जा सकती। आपके राज्य में अस्त्र-युद्ध दिखाई ही नहीं पड़ता है।

राजा ने कहा—समुद्र-पर्यन्त कर ग्रहण करनेवाले मेरे साथ युद्ध करनेवाला (मेरा) विरोधी कोई नहीं है। तब युद्ध किसके साथ होगा ?

कुमार ने कहा—देव! राज्य का फल है राजा का विजय-सुख। विना युद्ध के विजय कैसे अथवा उसका सुख कहाँ से ? यदि आपका मन हो तो मैं यहाँ से जाता हूँ (जाऊँ)। जिसके राज्य में मैं जाऊँगा वही आपके साथ युद्ध में लड़नेवाला (विरोधी) हो जायगा।

राजा ने क्रोधित होकर कहा—रे कुमार! तुम कौन ऐसे मूर्ख अभागे हो ? किस दर्प से इस तरह बोलते हो ? तो (अभी) जाओ जहाँ जाते हो (जाओगे)। जहाँ तुम जाओगे वहीं मैं (युद्ध के लिए) प्रयाण करूँगा।

कुमार ने कहा—यह मैं चला।

वहाँ से कुमार चिक्कोर नामक राजा के राज्य में गये। इसके आगे (बाद) उसके वहाँ गये सुनकर काशीश्वर चतुरंगिणी सेना लेकर चिक्कोर के विरुद्ध (की ओर) चले।

कुछ काल के बाद उनको समीप आया सुनकर चिक्कोर ने अपने मन्त्रियों के साथ परामर्श किया कि काशीश्वर महाराज क्रोधित होकर मेरी ओर लक्ष्य करके आ रहे हैं तो अब युद्ध करना उचित है। मन्त्रियों ने कहा—देव! आपकी शक्ति सीमित है। उस महाबली के साथ (आपका) युद्ध करना उचित नहीं है। और न आपके पास उस महेश्वर से सन्धि करने योग्य धन ही है। इसलिए (किसी तरह) दुर्ग (किले) का आश्रय लेना उचित है। इसके बाद भागने के लिए उद्यत चिक्कोर राजा को देखकर मल्लदेव ने कहा—हे राजन्! आप क्यों इस तरह भाग रहे हैं ? आपके उद्देश्य से काशीश्वर न तो कभी आये हैं और न आगे कभी आयेंगे। यदि आप विश्वास करें तो मैं उनके आगमन का कारण (उद्देश्य) कहूँ। आपको डरना नहीं चाहिए।

चिक्कोर ने कहा—उनका निमित्त (उद्देश्य) क्या है ?

मल्लदेव ने पहले की कहानी कह सुनाई।

चिक्कोर ने कहा—तब क्या उचित है ?

मल्लदेव ने कहा—यदि वह केवल मुझे उद्दिष्ट करके (विषय बनाकर) आते हैं तो आप भागें नहीं। अपितु (किन्तु) अकेले मेरे साथ उनके अनेक योद्धाओं की युद्धलीला देखें (देखी जाय)।

चिक्कोर ने कहा—कुमार! अपार सेना रखनेवाले उस महाराज के साथ आपका अकेले लड़ना उचित नहीं। यह नीति के विरुद्ध है।

कुमार ने कहा—वीर लोग कर्त्तव्य में दूसरों के अमर्ष को नहीं सह सकते हैं।

चिक्कोर ने कहा—इसीलिए तो बिना विचारे जो कार्य करते हैं, उनके कार्यारम्भ का अन्त (परिणाम) विपत्तिजनक होता है।

कुमार ने कहा—यह विवाद व्यर्थ (है)!

जो कार्य मैं स्वयं करूँगा, उसका फल भी तो मैं खुद ही भोगूँगा। अपने ही अपराध से जो विपत्ति में पड़ता है, उसकी विपत्ति को कौन सोचता है?

चिक्कोर ने कहा—समान बल में युद्ध उचित है, जहाँ विजय में सन्देह रहता है। प्रबल शत्रु के बल में कीड़ों (फतिंगों) की तरह कौन गिरता (कूदता) है?

कुमार ने कहा—यश की इच्छा से जिसके युद्ध में मरण को वरण किया है, उसके लिए उससे अधिक भय का स्थान, शत्रु के प्रबल रहने पर भी, क्या हो सकता है?

और—

यश की कामना से युद्ध में मरण की इच्छा रखनेवाले पुरुषों के लिए, शत्रु के महत्त्व से ही यश का भी महत्त्व होता है।

साथ ही—

प्राण बचाने के लिए जो मनुष्य युद्ध से भागते भी हैं, उनकी भी मृत्यु अवश्य होती है, तब अधिक होता है केवल कार्पण्य (कायरता)।

चिक्कोर ने कहा—कुमार! आप महावीर हैं। काशीश्वर महाराज हैं। इसलिए आप दोनों के युद्ध का संघर्ष हमलोगों के द्वारा सुना भी नहीं जा सकता है, फिर देखने की बात ही क्या!

कुमार ने कहा—यदि आपको युद्ध का देखना भी अभिमत न हो तो आप जायँ। जो स्थान यमदूत को देखा हुआ नहीं है (ऐसे) किसी स्थान में जाकर अमर हो जाइए। मैं तो युद्ध करूँगा ही। किन्तु, तब मुझे आप एक हाथी देकर जायँ। मैं तो आपके शून्य नगर की भी देखरेख कर लूँगा। चिक्कोर कुमार की बात से वैसा करके भाग गये।

उसके अगले दिन सबेरे भेरी के शब्द (नाद) से गगनमण्डल को भरते हुए, कूर्म के मर्म को स्पर्श करनेवाले घोड़े की टापों के प्रहार से पृथ्वी-मण्डल

को डगमगाते हुए महाराज जयचन्द्र उस नगर के समीप पहुँच गये। उनको पहुँचे हुए जानकर मल्लदेव ने कवच लगाकर अस्त्र धारण कर, आगे बढ़कर राजा को देखा।

राजा ने कहा—हाथी पर सवार तुम कौन हो? सन्धि चाहनेवाले चिक्कोर के दूत हो अथवा युद्ध चाहनेवाले मल्लदेव हो?

मल्लदेव ने कहा—राजन्! न मैं दूत हूँ और न सन्धि का इच्छुक। किन्तु मैं हूँ आपका प्रतिद्वन्द्वी योद्धा मल्लदेव।

राजा ने हँसकर कहा—अच्छा! मेरी प्रतिमल्लता (विरुद्धता) तो सिद्ध ही हुई। तुम इधर आकर मेरा अनुसरण करो।

मल्लदेव ने कहा—आपही क्यों नहीं मेरा अनुसरण करते हैं?—अभी आप (तुम) घोड़े पर हैं और मैं हाथी पर, आप भी अस्त्र धारण किये हुए हैं, मैं भी अस्त्र धारण किये हुए हूँ। इसलिए (इस) अभी प्रहार करने के समय वार्त्ता (वचन)-विलास के लिए समय (अवकाश) कहाँ है?

राजा ने आश्चर्यचकित होकर सैनिकों से कहा—अरे सैनिको! मल्लदेव को जीवित ही पकड़कर मुझे (समर्पित करो) दो। मल्लदेव ने सबको सम्बोधित कर कहा:

हे आकाशचारी दिक्पालगण, मुनियो, सिद्धो, (और) देवताओ! आपलाग साक्षी हैं, सभी मेरी लीला देखते जायँ। हे राक्षसो! मनुष्य के मांस से तृप्त होओ। वीरों के प्रति अनुराग हेतु उत्सुक अप्सराओ! सहसा आनन्द पाते जायँ। रणभूमि में अकेले मल्लदेव बहुतों के साथ साहस कर (फैला) रहे हैं।

इसके बाद, पकड़ने के लिए चारों ओर से आते हुए शत्रु-योद्धाओं को मल्लदेव ने बाण-चक्र (वर्षा) से (मारने लगा) मारा। उनसे आहत अपने प्रिय योद्धाओं को भूमि पर गिरते हुए देखकर जयचन्द्र ने (अपनी) सेना को आदेश दिया—अरे वीरो! यदि इस मरणेच्छुक (मरणोन्मुख) योद्धा को रोक नहीं सकते हो तो शरों की वर्षा से स्नान कराओ (डुबाओ)। तब अपने स्वामी की इस आज्ञा को पाकर योद्धागण ने एक ही साथ प्रत्यञ्चा (धनुष की डोरी) के आघात के शब्द से भयंकर शरों की धारा से उस मल्लदेव को भिगा दिया। शरों से वेष्टित होकर वह हाथी से भूमि पर गिर पड़ा। उस समय के किसी कवि का श्लोक है:

अस्सी वर्ष वयस के चिक्कोर भाग गये। किन्तु, सोलह वर्ष का कर्णाट सम्मुख होकर रणभूमि में गिर पड़ा।

अत्यधिक शरों के आघात से छिन्न-भिन्न शरीरवाले उसे (कुमार को) रणभूमि में गिरा हुआ देखकर राजा ने पूछा—हे सात्त्विक-श्रेष्ठ! कर्णाटकुल की प्रतिष्ठा के बीजांकुर!

क्या आप जीवित रहेंगे (रहना चाहते हैं) ?

मल्लदेव ने पूछा (कहा)—हम दोनों के युद्ध में कौन जीता ?

राजा ने कहा—आप जीते।

(मल्लदेव ने कहा)—इसका निर्णय कैसे होगा ?

राजा ने कहा—आप अकेले हम बहुतों से युद्ध कर आहत हुए, फिर भी (आप) हमलोगों को जीतना चाहते (जीतने की इच्छा रखते) हैं, फिर आप विजयी कैसे नहीं हुए ?

तब उस राजा के प्रशंसापूर्ण वचन से पुलकित बाहुमूल (वाले) मल्लदेव ने कहा—देव ! हाँ, मैं जीऊँगा।

इसके बाद उनकी वीरता से प्रसन्न हुए राजा जयचन्द्र के द्वारा शरों को हटवाकर (बाहर निकालकर), वह कुमार, अपने (उनके) यहाँ लाया गया, पुत्रवत् प्रेम से परिपालन कर और घाव छूटने के बाद पूजा (सम्मान) कर (राजा के द्वारा) प्रतिनिधि बनाया गया। (इसीलिए तो) कहा गया है—

मल्लदेव का वह शौर्य और राजा का वह विवेक न तो भूत (काल) में हुआ है और न भविष्य में होगा।

हे राजा ! (अब) सिंहराज के सार का सार निकालकर (खोजकर) आपके आगे (समक्ष) गद्य-पद्य द्वारा कहता हूँ।

युद्धवीर-कथा को सुनकर महान् बलदेव प्रयाग-क्षेत्र को छोड़कर फिर काशी जाने को उद्यत हुए।

इस प्रकार, विद्यापति कवि-विरचित भूपरिक्रमण के महाप्रयाग-विवरण में युद्धवीर-कथा समाप्त हुई।

चतुर्थ प्रस्थान

काशीक्षेत्र-विवरण

वेणीदेश को छोड़कर (निकलकर), यत्नपूर्वक गंगा को पारकर मुनि के साथ (बलदेव) प्रतिष्ठानपुर नगर गये।

चन्द्रवंश की राजधानी को छोड़कर मुषलधारी हली कामचक्र के पश्चिम नाकदेश गये।

पाँच (वाण) योजन में फैले हुए सुकर्मभूमि को छोड़कर-(पारकर) मुनि के साथ बलदेव कैवल्यभूमि पहुँचे। जहाँ (वहीं) चारों मुक्ति देनेवाली चतुःक्षेत्रा (भूमि) है, जहाँ भैरव के साथ-साथ विश्वेश (शिव) जाग्रत् (जागते) हैं। सर्वप्रथम पंचक्रोशान्वित (पाँच कोस में फैला हुआ) काशी-क्षेत्र मिलता (प्राप्त) है, जहाँ देवतागण आनन्द के साथ एकत्र होकर रहते हैं।

वरणा और असि (दोनों) नदियों के बीच तीन कोश में व्याप्त (मही) भूमि वाराणसी नाम से विख्यात है, जो प्राणियों के लिए देवत्व-प्रदायिनी है।

तीसरा अविमुक्त नामक क्षेत्र दो कोस में व्याप्त है। यह मृत प्राणियों को सहज ही (शीघ्र ही) नित्य सारूप्य मुक्ति देनेवाला है।

चौथा अन्तर्गृह-क्षेत्र है, जो शिवगेह नाम से प्रसिद्ध (ज्ञात) है। केवल एक कोस में व्याप्त इस शुभपुरी में (बलदेव) गये।

हे राजन्! त्रिकालज्ञ-सहित बलदेव (वहाँ) बारह रात वास करके काशी-क्षेत्र पहुँचे।

बारह गाँवों के निवासी बलदेव के दर्शनार्थ (आये)। मध्यमेश्वर से आरम्भ कर सूत्रपाणि की प्रदक्षिणा की।

(फिर) कामपाल ने पंचक्रोश की परिक्रमा की (और) सर्वप्रथम मुनि के साथ कर्द्मेश्वर गये।

इसके बाद हड्डिपाल देश के बीच पलाश-कानन में और गंगातीर (तट) पर वास करनेवाले, लाक्षागेह के राजा सुतपसेन, जहाँ पहले, दल के साथ विनयभाव से पूजने के लिए बलदेव के समीप आये। हली (बलदेव) को प्रचुर धन देकर जतुभूमि गये।

आंगुलिग्राम के ब्राह्मणगण बलदेव के (सेवार्थ) पास पहुँचे। और, उन लोगों को (राजाओं में सिंह) बलदेव ने दिव्य ज्ञान दिया।

इसके बाद बलदेव रामेश्वरपुर तथा कुसुमपुर गये। हे राजन्! करेठ ग्राम में वास करनेवाले यदुवंशी राजा, कुन्द और चन्द्र के समान सफेद (धवल) उनके अतुल रूप-सौन्दर्य को देखने के लिए, पहुँचे। दुर्ग-वंश में उत्पन्न पामर नामक राजा बलियग्राम से कपिल-तीर्थ आये। श्रीकृष्ण के अग्रज (बलदेव) को देखकर बारम्बार प्रणाम कर मुनि के समक्ष (बलदेव को) बहुत रत्न दिया।

पृथक् रूप से करिपात और शिखर गिरिपाद से दस राजा (पहुँचे)। उन्होंने (उन सबने) वरणा के समीप कुलस्तम्भ के पास (बलदेव से) साक्षात्कार कर (मिलकर) पूजा की और हृष्ट रूप देखकर विमुग्ध हुए।

यक्षिणी-देश के वासी जो सामान्यतः शाक्त (शक्ति-सेवक) होते हैं, और दक्षदेश के बहुत-से ब्राह्मण बन्धुगण भी पहुँचे। अष्टग्राम, गण्डाह-ग्राम और भद्रग्राम के गोपाल सम्प्रदाय के बुद्धिमान् अधिपति आये और (बलदेव का) पूजन किया। सभी राजाओं से नाना प्रकार के धन पाकर (ग्रहण कर) उन्हें विदा (विसर्जन) कर, वरणा के तट पर यत्नपूर्वक शिव-लिंग की स्थापना की।

हे राजन्! आदिकेशव के समीप निशीथ (गहरी रात) में उस महा-मुनि ने काशी की प्रशंसा कर बलदेव को सत्यवीर-कथा और अक्रूर-कथा-प्रसंग से चोर आदि की कथा सुनाई।

बृहत् धर्म और पुराणों (ग्रन्थों) से उद्धरण लेकर कवि विद्यापति ने काव्यरीति से राजा देवसिंह को (सुनाया) कहा।

सत्यवीर-कथा

कलियुग में कामना आदि दोषों से युक्त मिथ्यावादी मनुष्य भी सत्यवीर-कथा को सुनकर सभी पापों से मुक्त होता है।

प्राचीन काल में हस्तिनापुर नामक नगर में महमन्द नामक यवन बादशाह हुए। आसमुद्र (समुद्र तक फैले हुए) पृथ्वी पर शासन करनेवाले उसके उत्कर्ष को बर्दाश्त नहीं करके (असहिष्णु), काफरराज उनपर आक्रमण करने के लिए सकल बल सहित वहाँ पहुँच गया। उनको आते हुए जानकर यवनेश्वर अनेको लाख कम्बोज घोड़े और तुर्क घुड़सवारों के साथ नगर से बाहर होकर उससे (साथ) युद्ध (प्रारम्भ) करना स्वीकार किया। उन दोनों में युद्ध प्रारम्भ होने पर (अधिक) बलवान् काफरराज की सेना द्वारा मार खाकर (आहत होकर) यवन योद्धा रण से पराङ्मुख हो गये (भागने लगे)।

तब उस तरह, सिंह के भय से त्रस्त हाथियों के दल के समान भागते हुए अपनी सेना को देखकर यवनेश्वर ने कहा—मेरी सेना के योद्धाओ, राजाओ और राजपुत्रो! आपलोगों के बीच कोई ऐसा नहीं है, जो सम्प्रति शत्रु के भय से भागती हुई मेरी सेना को अपने बाहुबल से एक क्षण भी रोक (अवलम्बन दे) सकता है?

तब यवनराज के इस वचन को सुनकर कर्णाटकुल-सम्भूत नरसिंह नामक और चौहान-कुलोत्पन्न चाचिक नामक (दोनों) राजकुमारों ने कहा—राजन्! नीचे की ओर गिरते जल की तरह शत्रु के भय से भागती हुई आपकी सेना की रक्षा करनेवाला अभी कौन है? फिर भी, क्षणभर घूमकर यदि आप देखें तो हम दोनों ही आपके शत्रुपक्ष के शिरों (गर्दनों) को तलवार की धार के प्रहार से परिचित करा दें।

यवनेश्वर ने कहा—वाह! रे दोनों राजकुमारो! वाह!

आप दोनों के अलावा कौन ऐसी व्यवस्था कर सकता है?

इसके बाद रोमांच से अलंकृत (रोमांचित) बाहुमूलवाले नरसिंहदेव वज्रपात-सदृश चाबुक के प्रहार (चोट) से घोड़े को (अति तीव्र) दौड़ाकर, लौटकर अतर्कित (किसी को अन्दाज नहीं हुआ) ही काफर की सेना में घुस गये। घुसकर विजय से आह्लादित, श्वेत छत्र से पहचाने जानेवाले, काफरराज को आते हुए देखकर (उसने) शल्य से (मर्मान्तिक) कलेजे पर चोट की। काफरराज निष्प्राण होकर जमीन पर गिर पड़ा। (तब) चाचिकदेव भूमि पर गिरे हुए उसके मस्तक को काटकर यवनराज के समक्ष लाया।

यवनेश्वर ने पूछा—यह किसका शिर है?

चाचिक कहता है—काफरराज का।

यवनेश्वर ने पूछा—यह किसके द्वारा मारा गया है ?

चाचिक कहता है—हे राजा ! पराक्रम में पार्थ (अर्जुन) से तुलनीय नरसिंहदेव द्वारा मारा गया है। उनके (नरसिंहदेव के) पीछे-पीछे चलते (जाते) मेरे द्वारा मस्तक काटा गया है।

यवनेश्वर पूछते हैं—नरसिंहदेव कहाँ हैं ?

चाचिक कहता है—काफरराज के सन्निकटस्थ रहनेवाले, अपने स्वामी के वध से विशेष क्रुद्ध, अनेक मंगोल योद्धाओं से चोट खाते हुए (मारे जाते हुए) एक को मैंने देखा। वह कहाँ गये, वा अभी कहाँ हैं, यह मैं नहीं जानता।

इसके बाद यवनराज अपनी विपक्षी सेना को, नायक के मारे जाने पर, भागते हुए देखकर परम प्रसन्न हुए। उन लोगों का पीछा करनेवाले अपने सैनिकों से उन्होंने कहा—अरे रे मेरे सैनिको ! भागकर जाते हुए शत्रुसैन्य को क्या मारते हो ? अभी, मेरे राज्य की रक्षा करनेवाले, काफरराज के यमराज, नररूपी सिंह की सूचना मुझे देते जाओ।

इसके बाद युद्धक्षेत्र के एक भाग में बहुतेरे शरों से छिन्न-भिन्न हुए शरीर, हजारों जगहों से रक्त की धारा बहते हुए, फूले हुए पलाश की तरह, वेदना से मूर्च्छित नरसिंहदेव को, यवनराज ने देखा। घोड़े से उतरकर बोल उठा—हे नरसिंहदेव ! जीना चाहते हो ?

नरसिंहदेव ने कहा—मेरे द्वारा जो किया गया उसे आप जानते हैं ?

यवनेश्वर ने कहा—मुझे मालूम है।

चाचिकदेव ने कहा—आपने मेरे शत्रु को मारा।

नरसिंहदेव ने कहा—तब मैं जीना चाहता हूँ। क्योंकि जिसके हित की इच्छा से मैंने दुष्कर कार्य किया, वह जब समझ गये तो मेरा श्रमरूपी वृक्ष फलित हुआ।

तब उसके शरीर से जड़ तक गड़े हुए शरों को निकालकर यवनराज ने उस कुमार का विविध प्रकार की औषधियों के प्रयोग से और संयम से थोड़े ही दिनों में घाव-रहित कर (चंगा कर) दिया।

इसके बाद हजारों घोड़ों, लाखों की संख्या में स्वर्ण-मुद्राओं, छत्र-चामर आदि से उनकी पूजा का आयोजन किया।

आयोजन के समय नरसिंहदेव ने कहा—हे राजन् ! राजपुत्रों के लिए तो युद्ध करना स्वाभाविक धर्म है। तब मैंने क्या अद्भुत किया है कि मेरी यह पूजा की जाती है ? यदि पूजा ही करनी है तो चाचिकदेव की की जाय,

जिन्होंने शत्रु के मस्तक को लाकर भी सत्य के रक्षार्थ आपके समक्ष मेरे यश को प्रकाशित किया है, अपने पौरुष को नहीं प्रख्यात किया है। नहीं तो, उनके द्वारा लाये गये मरण-चिह्न-स्वरूप शत्रुशिर को देखकर कौन समझता कि मैंने शत्रु को मारा। इसलिए पहले इनकी ही पूजा की जाय।

चाचिकदेव ने कहा—कुमार नरसिंहदेव! ऐसा मत कहिए। मैं कैसे आपके पराक्रम का फल लेकर दूसरों का उच्छिष्टजीवी होऊँ?

नरसिंहदेव ने कहा—वाह रे सत्यवीर! वाह!

आपके इस सत्य से सबका (सभी वस्तुओं का) विवेचन हो गया। हे चाचिक! आप महत्त्वाकांक्षी हैं। आप बुद्धिमान् हैं। आप सती-पुत्र हैं।

इसके बाद उन दोनों कुमारों के परस्पर वार्त्तालाप को सुनकर, परम सन्तुष्ट होकर, यवनराज के द्वारा दोनों (राज)कुमारों का समान सत्कार किया गया।

(इस तरह) सत्यवीर-कथा समाप्त हुई।

प्रत्युदाहरण-कथा

ऐसा है कि—मर्त्यलोक (संसार) में मनुष्य विवेक के विना चोर, शौर्य के विना कायर और उत्साह के विना आलसी हो जाता है।

उसमें पहले चौरकथा—

चौरकथा

जो व्यक्ति विवेक से उत्पन्न दया, दानादि-विहीन (रहित) होता है, उसके लिए शौर्य भी कुवृत्ति (बुरे कर्मों) का ही कारण होता है।

क्योंकि—

विवेक के विना शूर भी निश्चय ही पापाचरण (बुरे काम) करते हैं। जैसे, अच्छे कर्म करने में समर्थ रहते हुए भी सरीसृप चोर हो गया।

उज्जयिनी नगरी में विक्रमादित्य नाम के राजा थे। वह एक बार चौरकर्म देखने की उत्सुकता से भिखारी का वेष धारण कर अपने ही नगर में किसी देवालय के पास बैठ गये। इसके बाद अँधेरी रात के निशाभाग (मध्य रात्रि) में चार चोरों ने आकर आपस में मन्त्रणा की कि घर से लाये हुए अन्न को यहाँ खाकर, शक्तिशाली होकर नगर में प्रवेश करें।

विक्रमादित्य बोल उठे—उससे बचा हुआ जूठन मुझे देंगे? चोरों ने सन्दिग्ध भाव से पूछा—अरे तुम कौन हो?

राजा ने कहा—मैं भिखारी हूँ। भूख से व्याकुल होकर, चलने में असमर्थ रहने के कारण यहाँ लेटा हुआ हूँ।

चोरों ने कहा—हाँ! दिन में नगर के रास्तों को आजमाने के समय भी यह हमलोगों के द्वारा यहीं देखा गया था। अरे रंक! अभी तक तुम क्यों यहीं हो?

राजा ने कहा—देवयात्रा में आये लोगों से भिक्षा माँगने के लिए यहाँ आया हूँ। अन्यत्र कहाँ जाऊँ? भिक्षा नहीं मिलने से भूखा ही यहीं लेटा हूँ।

चोरों ने कहा—यदि तुम्हें जूठा अन्न दूँगा तो हमलोगों का कौन काम कर दोगे?

राजा ने कहा—बड़े-बड़े धनियों का घर दिखला दूँगा और चोरी किये हुए सामान का बोझ भी ढो दूँगा।

चोरों ने कहा—अच्छा, तो ठहरो। जूठा (बचा हुआ) अन्न ले लेना।

तब चोरों के भोजन करने पर, दिये गये जूठे अन्न को, खप्पर में रखकर बेताल द्वारा हटवाकर राजा ने कहा—आपलोगों की कृपा से आज मैं कृतार्थ हो गया हूँ।

तत्पश्चात् उन लोगों में से सरीसृप नामक मुख्य चोर ने कहा—चूँकि मैं शकुनशास्त्र में प्रवीण हूँ (ज्ञाता हूँ), इसलिए जानता हूँ कि सियार क्या बोलते हैं।

औरों ने कहा—समझो।

सरीसृप ने कहा—मित्रो, आपलोग सुनते जायँ।

सियार कहता है कि तुमलोगों के बीच चार चोर और एक राजा हैं।

उन लोगों ने कहा—हम चारों तो आपस में चिरपरिचित ही हैं। पाँचवाँ यह रंक (भिखारी) दिन में भी देखा गया और उसने अभी यहाँ भी जूठा ग्रहण किया है। तब यहाँ राजा की शंका कहाँ है?

सरीसृप बोला—सियार का कहा हुआ झूठा नहीं होता।

उन लोगों ने कहा—प्रत्यक्ष बाधित अर्थ में दुःशंका क्या?

तत्पश्चात् बातचीत करके पाँचों व्यक्ति नगर में प्रविष्ट हुए। पुरपति के घर में सेँध (काट)कर, बहुत धन चुराकर, नगर से बाहर आकर, गढे में गाड़ दिया। चारों चोर तालाब में स्नान कर फिर नगर में आकर मदिरालय में घुसे। और, राजा अपने राजमहल आये।

इसके बाद सभा-भवन में सबके पहुँचने की व्यवस्था कर सिंहासन पर बैठकर दण्डाधिकारी को बुलाकर आदेश दिया। राजा ने कहा :

अरे परलक्षक (गुप्तचर)! आप मेरे आज्ञापाल हैं और रात की घटना कुछ भी नहीं जानते हैं? तो जाइए, अभी चार चोर पिचिण्डिल नामक सूरी (कलाल) के घर में सेँध कर रहे हैं। उन्हें (हथ)कड़ी लगाकर शीघ्र ले आयँ। दण्डनायक प्रणाम करके गया और वैसा ही किया।

राजा ने कहा—अरे मेरे मित्र चोरो (चोर मित्रो)! क्या मुझे पहचानते हो?

सरीसृप ने कहा—श्रीमान्! मैं तो उसी वक्त आपको पहचान गया। किन्तु मेरे साथी परम दुष्ट (मूर्ख) हैं, सियार द्वारा कही हुई (बात) को भी असत्य मान लिया। मैं क्या करूँ? साथियों की बात से मैं भी भ्रमित हो गया। कहा गया है :

नीति जाननेवाला यदि अकेले ही कार्य करे तो सुखी हो सकता है, बहुतों की अपेक्षा करने से ही बुद्धि स्थान-भ्रष्ट हो जाती है।

और भी—

हे महाराज ! कैसा भी सार जाननेवाला हो, कैसा भी वीर हो, कैसा भी पण्डित (बुद्धिमान्) हो, कैसा भी कार्यकुशल हो, (फिर भी) बहुतों के बुद्धि-रूपी पंक में फँसता ही है।

राजा ने कहा—अरे चोरो ! दूसरों के उपदेश ग्रहण करने से अपने प्रमाद के बारे में तो सोचते हो, अपने ज्ञान के दोष से हुई बात को क्यों नहीं सोचते ? चोरों ने कहा—हमलोगों के अपने ज्ञानदोष से कौन प्रमाद हुआ है ?

राजा ने कहा—तुमलोगों का यह प्रमाद स्पष्ट है कि वीरवृत्ति करने में समर्थ रहते हुए भी चोर की वृत्ति करते हो। क्योंकि—

जिस शूरता से भूमण्डल में दूसरे लोग धन-सम्पत्ति का अर्जन कर प्रभुता पाते हैं और आनन्दित रहते हैं, विद्वानों की मण्डली में चारों ओर (सर्वत्र) पुण्य और शुद्ध यश प्राप्त करते हैं, उसी श्लाघ्य साधक महती शूरता से तुमलोग संसार में निन्दा के आस्पद—चोर की वृत्ति—करते हो। आह ! (हाय !) दुर्मति का त्याग कठिन है।

चोरों ने कहा—हे देव ! दुर्मति ही यहाँ (इसका) कारण है।

राजा ने कहा—जब यह स्वीकार करते हो तो उस दुर्मति को क्यों नहीं त्यागते हो ?

चोरों ने कहा—हे देव ! दरिद्रता उसके त्याग करने में प्रतिबन्धक (बाधक) है। क्योंकि—

हाय ! दरिद्रता हमलोगों से क्या-क्या नहीं करवाती है—पापकर्म में प्रेरित करती है, दुःख का भोग करवाती है, चोरी (चोरी की शिक्षा देती) करवाती है, शठता उत्पन्न करवाती (लाती) है, दीन वचन कहवाती है और नीच जनों से भीख मँगवाती है।

राजा ने कहा—अरे चोरो ! तुमलोगों की दरिद्रता तो उसी समय चली गई जब मेरे साथ मैत्री हुई। मैत्री-भाव तो समान व्यक्तियों के बीच ही सम्भव होता है। तुमलोगों के साथ मैत्री कर यदि मैं कुछ क्षण के लिए चोर (बना) हुआ तो तुमलोग मेरे साथ मैत्री कर राजा क्यों नहीं होगे ? तब आगे भी इस दुर्मति को छोड़ोगे (या नहीं) ?

चोरों ने कहा—क्यों नहीं छोड़ेंगा ?

राजा ने कहा—अभी तो कड़ी (बेड़ी) से बँधे तुमलोग क्या-क्या नहीं स्वीकार करोगे !

क्योंकि—

विपत्ति में पड़ा हुआ देखकर जीभ मधुरवाणी (मीठे वचन) से कौन-कौन अवगुण नहीं छोड़ती है और कौन-कौन गुण नहीं ग्रहण करती है !

अथवा फिर यदि कुवृत्ति करोगे तो फिर इसी दशा को प्राप्त करोगे। यह कहकर राजा ने पुरपति का धन पुरपति को दिलाकर चोरों को छोड़ दिया। उन लोगों के बीच सरीसृप नामक प्रमुख चोर को शाल्मलीपुर का राजा बना दिया। अन्य चोरों को स्वर्ण (देकर) से दरिद्रता-रहित करके करुणा और कुतूहलवश रवाना किया।

कुछ दिनों के बाद राजा ने सोचा कि सरीसृप को तो मैंने राजा बना दिया, (किन्तु) यह निरूपण करना चाहिए कि राजा की पदवी पाकर वह चोर क्या (कैसा आचरण) करता है। कारण—

दुर्बल के लिए गुरुभार, मन्दाग्निवाले के लिए गरिष्ठ भोजन, दुर्बुद्धि के लिए बड़ा राज्य, सुखद परिणाम(दायक) कैसे होगा ?

इसके बाद राजा ने सुचेतन नामक चर (गुप्तचर) को, जिस चोर ने राज्य प्राप्त किया था, उसके चरित्र का निरूपण करने के लिए भेजा। गुप्तचर वहाँ जाकर सब वृत्तान्त जानकर लौट आया।

राजा ने पूछा—सुचेतन ! समाचार सुनाओ।

चर ने कहा—देव ! मैं यह विचार नहीं करूँगा कि आपको क्या अच्छा लगेगा और क्या बुरा। मैं सत्य कहता हूँ। गुप्तचरों के लिए मिथ्या भाषण उचित नहीं है। क्योंकि—

जिस प्रकार कानी आँख से प्राणी कुछ नहीं देखता है, उसी प्रकार असत्य बोलनेवाले गुप्तचर से राजा कुछ नहीं देखता है।

इसलिए मैंने उसका चरित्र जैसा देखा है उसका वर्णन पद्य द्वारा करता हूँ। सुनें महाराज !

एक व्यक्ति के प्रति दयाभाव से आपने, दूसरों के अनिष्ट करने में प्रवीण उस दुरात्मा को राज्य देकर बहुतों के लिए आफत (विपत्ति) ढा दी है।

वह तो पहले से ही दुराचारी था, (फिर) आपने समर्थ कर दिया है। दुराचारी और समर्थ होकर वह क्या नहीं करे ?

महान् आत्मावाले आपने दया से भरे हुए चित्त द्वारा उसकी दुर्गति खण्डित कर (काट) दी है, किन्तु प्रकृति खण्डित नहीं हुई।

यश, पुण्य और सुख—ये तीनों राज्य-रूपी वृक्ष के फल हैं। जब ये उसे प्राप्त नहीं हुए तो राज्य से (उसे) क्या प्रयोजन ?

साधुओं का द्रव्य छीन लेता है, मनस्वियों का मान हरण कर लेता है, अपनी सुविधा के लोभ से दुरात्माओं (दुर्जनों) के लिए क्या अकृत्य होता है ?

दूसरों की स्त्रियों के साथ रमण करता है, अपने जीवन को स्थिर (अमर) समझता है और कामदेव के अस्त्र को देखते हुए भी यम के अस्त्र को नहीं देखता है।

न तो वह पाप से डरता है, न अपकर्म से (लजाता) लज्जा करता है, न दूसरों के धन से तृप्त होता है। घस्मर को घृणा कहाँ ?

बोलता है कि चोर की वृत्ति से मैं राजा बना हूँ, (फिर) अपनी हित-कारिणी उस वृत्ति को किस दोष के कारण त्याग दूँ ? दुर्वृत्ति से राज्य मिलता (प्राप्त होता) है, इस अभिप्राय से उसमें लगा हुआ वह स्वयं ही पक्ष और दृष्टान्त बना हुआ दुर्वृत्ति का त्याग नहीं कर रहा है।

हाथियों की घटा से आवृत और सैकड़ों रमणियों से सेवित रहने पर भी, विवेक के अभाव में उस दुरात्मा को राज्य नहीं शोभता है।

जब चोर (किसी) भू-भाग पर शासन करता है तो शिवोत्तर (शिव की सम्पत्ति) भी अग्राह्य नहीं है, ब्राह्मण भी अवध्य नहीं हैं, मुनियों की भी मान्यता (सम्मान) नहीं है।

वह अपने किये हुए कार्य को खुद ही नष्ट (लुप्त) कर देता है। जिनके चित्त तृष्णा से आक्रान्त रहते हैं, उन्हें अपने विषय में स्थिरता कहाँ से आयगी ?

राजा ने कहा- हे सुचेतन ! इन पदों से इस दुरात्मा के चरित्र को जानकर मैं दुःखी (हो गया) हूँ। मैं मानता हूँ कि यह मेरी भी अपकीर्त्ति (अपयश) है।

चर ने कहा—हे देव ! अपयश तो केवल आपका ही है। क्योंकि चारों ओर लोग बोलते हैं—

यह तो साहसाङ्क (विक्रमादित्य) के लिए लज्जा का विषय है और चौरराज के लिए गुणगान है कि दोनों का परस्पर मैत्री-भाव स्पष्ट (विदित) हुआ है।

नीच (अधम) को बढ़ाने में संलग्न महान् व्यक्ति भी छोटा (अधम) हो जाता है। मृग को अपने अंक में रखकर चन्द्रमा कलंकित हुए हैं।

राजा ने पूछा—तो अब क्या उचित है ?

(गुप्त)चर ने कहा—देव ! जो महान् हैं उनके लिए अपयश मिटाना ही कर्त्तव्य है। वह अबतक सुगमता से हटाया (मिटाया) जा सकता है। जन-सामान्य के मुख में अगर अपयश (दुःकीर्त्ति) स्थान पा गया तो उसे मिटाना कठिन हो जायगा।

इसके बाद राजा विक्रमादित्य ने वेष बदलकर, चोर के राज्य में जाकर, गुप्तचर की बातों की परीक्षा की। इसके बाद चोर को राजपद से उतारकर, पूर्वावस्था में पहुँचाकर, मार डाला।

ऐसा श्लोक है :

अब नगर शान्त रहे, प्राचीन विषय के ज्ञाता पण्डितगण गुण से गौरव प्राप्त करें, व्यापारी-गण निरापद होकर स्वेच्छानुसार मार्ग पर चलें, घर-घर में लोग चैन से सोयें, धर्मोत्सव जाग्रत् हो; क्योंकि सज्जनों के द्वेषी, दुर्वृत्त चरित्रवाले चोर को अपराधियों के शत्रु राजा (विक्रमादित्य) ने मार डाला है।

इस तरह विद्यापति कवि द्वारा विरचित भू-परिक्रमण ग्रन्थ में काशी-तीर्थ-सम्बन्धी दोनों कथा-विवृति समाप्त हुई।

पञ्चम प्रस्थान

सिद्धदेश-विवरण

इसके बाद प्रातःकाल काशी को छोड़, मुषलधारी बलदेव, स्वर्गभूमि गये। वहीं जैनदेव के समीप अत्यन्त रमणीय सारनाथ है। वहाँ अजगर साँप का वृत्तान्त प्रसिद्ध है, (जिससे) कलियुग की यातना नष्ट होगी।

स्वर्गभूमि को छोड़कर, गोमती नदी को पारकर त्रिदलकानन को स्पर्श करके, गाधिदेश को छोड़कर बलदेव क्रमशः वामनाश्रम और च्यवनाश्रम गये। तब च्यवन मुनि को प्रणाम कर उन्होंने निर्जरौषधि-पान किया।

कारुष को दक्षिण करके, कर्मनाशा को छोड़कर ताडका-विपिन के बीच रामरेखा (नदी) को देखा। वहाँ सिद्धाश्रम है, जो पञ्चक्रोश के योगियों के लिए सिद्धिदायक है। सात योजन में फैला हुआ देश तो सदा कर्कश रहा है। अनेक प्रान्तों(देशों)वाला यह (क्षेत्र) राजा भोज के वंश द्वारा शासित है। डेढ़ योजन के मध्य गौतम की प्रिय भार्या का पीठ (स्थान) नदी-तट पर स्थित है, जो लोगों में अहल्या-वाटिका नाम से प्रसिद्ध है। वहीं सोमलाली महाग्राम है, जहाँ विद्वानों में अन्यतम सर्वगुणश्रेष्ठ राजा भोज ने शरीर-त्याग किया था। हठपुर ग्राम में राजपुत्र राजा थे।

वहाँ विक्रमादित्य की सन्तानों का वास खूब रहा है। इस देश में अनेक राजपुत्र वास करते हैं। हे राजन्! कलियुग में वे इस भूमि पर शासन करते हैं। सिद्धदेश में तीन सौ मुख्य ग्राम विख्यात हैं।

वहाँ युग-युग से रामभक्त जाग्रत् हैं। मुनि के साथ बलदेव ने शीघ्र विश्वामित्र-स्थल जाकर वहाँ पाँच दिनों तक वास किया। उन्होंने वहाँ नाना प्रकार के ज्ञान का अर्जन किया। वहीं बलदेव को ताडका-वध का वृत्तान्त सुनाया। सब कुछ सुनकर बलदेव ने विश्वामित्र के विषय में पूछा। इसके बाद बलदेव गंगा (पारकर) के उत्तर-भाग में दर्दुर-क्षेत्र गये। वहाँ सरयू-संगम के पास बलिग्राम है। हे राजन्! कोई-कोई त्रिकोण-क्षेत्र के दर्दुर-क्षेत्र की महिमा का गान करते हैं। दो सौ ग्रामों से युक्त वह क्षेत्र आठ योजन तक व्याप्त है। वहीं भार्गव मुनि का पवित्र स्थान है, जो सबको मुक्ति देनेवाला है। वहीं वालिय-क्षेत्र के बाद लोहड़ि ग्राम विख्यात है। ताजपुर नामक एक महाग्राम है। मुनि के साथ बलदेव ने उस क्षेत्र की भी प्रदक्षिणा की। वहीं विक्रममूर्त्ति (स्थल) है, जहाँ श्रावण शुक्ल पञ्चदशी तिथि को विष्णु ने वामन का रूप धारण कर प्राचीन काल में बलिराज के निकट याचना की। वहीं नदी-तट पर विक्रम-स्थल में मुनिगण रहते हैं।

वहीं त्रिपाद-भूमि है, जहाँ वामनेश्वर ने वध किया। बालिग्राम के समान कोई दूसरी पुण्य-भूमि नहीं है। हे महाराज देवसिंह! सरयू और गंगा के संगम पर प्राचीन-काल में दानक ग्राम था, जो संगम के वेग से नष्ट हो गया। जहाँ शुक्राचार्य मुनि ने कुश द्वारा काणत्व को प्राप्त किया, वहाँ मुनि के साथ बलदेव ने तीन दिनों तक वास किया।

संगम के समीप उन्होंने वज्रसार राजा को देखा और चम्पारण्य देश के राजा को दिव्य ज्ञान दिया।

त्रिकालज्ञ मुनि ने पद्य-छन्द में भीरु लोगों की कथा कही। हे राजन्! उसी को विद्यापति कवि ने लोकरीति और काव्यरीति से यवनादि नाम को ग्रहण करके नाना प्रकार की (राज) कथाओं से युक्त कर पद्यवाक्य को लक्ष्य बनाकर कहा (है)।

भीरु-कथा

शौर्य-विहीन व्यक्तियों को विद्वान् लोग कातर कहते हैं। वह अगर प्राण-कातर है तो भीरु (कहलाता) है और अगर धन-कातर है तो कृपण।

अकारण ही विपत्ति की आशंका, अपने को शक्ति में अल्पज्ञान (कमजोर मानना), जो भयंकर नहीं है उसे भी भयंकर होने का भ्रम भीरु को सर्वत्र होता है।

गंगा के दक्षिण-तट पर पारिभद्र नाम के राजा हुए। स्वभाव से भीरु वह पिता द्वारा अर्जित राज्य में मन्त्रियों द्वारा राजा बनाये गये। पश्चात् उनकी भीरुता को देखकर समीपवर्त्ती राजागण उसकी भूमि-सीमा को दबाने लगे। ज्यों-ज्यों शत्रुगण उनकी सीमा को दबाते (कब्जा करते) जाते थे, त्यों-त्यों वह भूमि को छोड़ते जाते थे। क्योंकि—

जो शान्त प्रकृतिवाले राजा शूरत्व के लिए शक्ति नहीं दिखाकर विना युद्ध के ही सन्धि करते हैं, वे शत्रु द्वारा पराभव पाते हैं।

कारण—

शत्रु, चुगलखोर (दुष्ट), बीमारियाँ—ये सब स्वभाव से ही अपकारी होते हैं। यदि इनका प्रतिकार नहीं किया जाय तो कदम-कदम पर बढ़ते (पराभव देते) रहेंगे।

क्रम-क्रम से शत्रुओं के आक्रमण और राजा की कायरता को देखकर मन्त्रियों ने कहा—देव! आपकी सहिष्णुता से तो शत्रुओं द्वारा भूमि दबायी जा चुकी है। जो बची हुई है उसकी रक्षा के लिए भी तो शक्ति दिखानी चाहिए।

राजा ने पूछा—कौन-सी शक्ति दिखानी चाहिए?

मन्त्रियों ने कहा—युद्ध द्वारा प्रभुता की शक्ति।

राजा ने कहा—अभी सन्धि ही कर लें। पारसाल (अगले वर्ष) युद्ध करेंगे।

मन्त्रियों ने कहा—जो उस समय करेंगे वह अभी क्यों नहीं करते हैं? जो काम अवश्य ही करना है उसमें समय बिताना व्यर्थ है।

राजा ने कहा—युद्ध होने से हाथी, घोड़े और पैदल सैनिक आदि गिरेंगे (मरेंगे)।

मन्त्रियों ने कहा—यदि युद्ध नहीं करेंगे तो सेना का प्रयोजन ही क्या है? युद्ध (प्रयोजन) के लिए ही तो सेना होती है। यदि गिरेंगे तो गिरेंगे (मरेंगे तो मरेंगे)।

राजा ने कहा—युद्ध में केवल सैनिक ही नहीं मरते, स्वयं अपने मरने (गिरने) का भी सन्देह रहता है। दोनों (ओर की) सेनाओं का युद्ध प्रारम्भ होने पर यदि पहला शर मेरी छाती में लगेगा तो आप स्वामिभक्त लोग क्या करेंगे?

इसीलिए तो नीतिशास्त्र में कहा गया है:

बुद्धिमानों को सर्वस्व का उत्सर्ग (त्याग) करके भी समय बिता लेना चाहिए। जिस किसी ने भी समय गुजार लिया उसने क्या नहीं गुजारा?

मन्त्रियों ने कहा—शक्तिहीनता और विपत्ति की स्थिति में समय गुजार लेना (पथ्य) उचित है, किन्तु, सामर्थ्य रहने पर कर्त्तव्य कर्म में बुद्धिमान् एक क्षण भी नहीं (गुजारते) सहते हैं।

सम्प्रति आप समर्थ हैं, (फिर भी) यदि शत्रु को नहीं दबायेंगे तो अवसर पाकर शत्रु ही आपको दबा (हरा) देंगे।

राजा ने कहा—तब युद्ध करने के लिए किसी को मेरा प्रतिनिधि बना लीजिए।

मन्त्रियों ने कहा—हे महाराज! अपने से निर्बल को मारने के लिए किसी को प्रतिनिधि (बनाइए) बनाना चाहिए। समान बल(सामर्थ्य)वालों के साथ संग्राम में ही युद्ध करने को तैयार हों। क्योंकि—

दूसरों के सौन्दर्य से सौभाग्य, दूसरों के पराक्रम से राज्य, और दूसरों की बुद्धि से विज्ञता कोई स्वीकार नहीं करता।

राजा ने कहा—हे मन्त्रिगण! कुछ भी कहिए, मेरा मन युद्ध के लिए उत्साहित नहीं हो रहा है। यदि आपलोग मुझे मारना चाहते हों तभी मुझे युद्ध में भेजें।

उस राजा की यह बात सुनकर सभी मन्त्रिगण वहाँ से उठकर बाहर निकल गये। वे आपस में विमर्श करने लगे कि यह कुमार, पिता के जीते-जी, बुद्धिमान् और कार्यक्षम मालूम पड़ता था। पिता के मरने पर भीरु दिखाई देता है। इसका राज्य कैसे रहेगा? क्योंकि—

जबतक यह दूसरे पर आश्रित था तबतक अत्यन्त शूर दिखाई पड़ता था। प्रायः (शायद) स्वतन्त्र होने पर ही मनुष्य अपने स्वभाव को पाता है। जबतक यह पिता की गोद में था तबतक कार्यकुशल मालूम पड़ता था। सर पर भार पड़ते ही इसकी भीरुता स्पष्ट हो गई।

भीरुता पुरुषों का महान् दोष है। क्योंकि, कोई भीरु का आश्रय नहीं ग्रहण करता है। भीरु के हाथ में लक्ष्मी नहीं बढ़ती है। हाय! भीरु दुष्ट जनों द्वारा दबाया जाता है। भीरु का उपहास स्त्रियाँ (भी) करती हैं। सैकड़ों कुतर्क में फँसे, चारों ओर से सन्देह के समु. में डूबे हुए भीरु के पुरुषत्व को विधाता ने छिपा लिया और स्त्रीत्व को प्रकट नहीं किया।

क्योंकि—

पहाड़ की कन्दरा में छिपे रहने पर भी, करोड़ों सेना से घिरे हुए रहने पर भी, सात समुद्र पार चले जाने पर भी, भीरु अपनी भीरुता को नहीं छोड़ता (छोड़ सकता) है।

इसकी भीरुता से यह राज्य तो (दिनानुदिन) क्रम-क्रम से क्षीण ही होता जायगा। विचारणीय (चिन्तनीय) यह है कि हमलोग क्या करें।

क्योंकि—

दुष्ट व्यक्ति तो अपने दोष से केवल स्वयं ही नष्ट होता है, किन्तु राजा के दोष से समस्त प्रजा नष्ट हो जाती है।

हमलोग परिवार और धन के साथ यहाँ रहते हैं। यदि अभी इस स्वामी को छोड़ देते हैं तो लज्जा और पाप दोनों हैं, यदि नहीं छोड़ते हैं तो विनाश होता है। इसलिए इस सम्बन्ध में क्या कर्त्तव्य होना चाहिए, इसके निर्णय में भारी सन्देह है।

सन्देह में निर्णय कर सकें, यही बुद्धि का फल है। तो, यह राजा सन्धि करे, समय गुजारे।

क्योंकि—

जिस विपत्ति के आने में कुछ क्षण का भी विलम्ब हो उस(विपत्ति)से नहीं डरना चाहिए। कौन जानता है कि (एक) क्षण के उपरान्त विधाता क्या विधान करेंगे?

यह विचारकर सभी मन्त्रिगण अपने-अपने घर गये।

उधर उस राजा पारिभद्र ने अपनी भीरुता के कारण क्रमशः शत्रुओं के आक्रमण से वेष्टित, शत्रु-सेना के डंके की आवाज सुनकर मन्त्रियों से पूछा—अरे! क्या वैद्यों की राय में (भेरी-ध्वनि) डंके की आवाज भेदक (विदारक) होती है?

मन्त्रियों ने कहा—कुमार! डंके की ध्वनि तो विदारक नहीं होती है, आपकी भीरुता विदारक है। राजा पीछे (बाद में) शत्रुओं के डंके की आवाज सुनकर दूर से ही भाग गया।

महत्त्व (महानता) छिपा रह गया (है), पौरुष तो दूर ही रहे, पिता द्वारा उपार्जित जो राज्य था उसे भी भीरु ने (हारकर) गँवा दिया।

और भी—

कोई भीरु का आश्रय नहीं ग्रहण करता है। भीरु के हाथ में लक्ष्मी नहीं बढ़ती है। हाय! भीरु दुष्ट लोगों द्वारा दबाया जाता है। भीरु का उपहास स्त्रियाँ (भी) करती हैं। सैकड़ों कुतर्कों में फँसे, चारों ओर से सन्देह के समुद्र में डूबे हुए भीरु के पुरुषत्व को विधाता ने छिपा लिया। और, स्त्रीत्व को प्रकट नहीं किया।

इस तरह भूपरिक्रमण-ग्रन्थ में, बलदेव-तीर्थयात्रा के सिद्धदेश-विवरण से भीरु-कथा समाप्त हुई।

षष्ठ प्रस्थान

नृसिंहतीर्थ-विवरण

इसके बाद बलदेव पाँच योजन दूर स्थित नृसिंहतीर्थ पहुँचे। भोजराज के नगर और पालित नगर—दोनों नगरों को छोड़कर मणिहारि के समीप नृसिंहतीर्थ गये।

त्रिकालज्ञ मुनिश्रेष्ठ ने बलदेव से कहा—प्राचीन काल में ब्राह्मरूप में नृसिंहदेव ने अवतार लिया। जिस मनुष्य ने माघ मास के उषाकाल में शोण और गंगा के संगम में स्नान किया, उसकी देह से पाप नष्ट हो जाता है।

नृसिंह-नखारभूमि तेरह योजन में व्याप्त है। हे राजन्! जो भूमि कारुष और पाटलिपुत्र के मध्य में स्थित है, वही भूमि अत्यन्त उग्र और क्रूर (निर्दय) है। (यह भूमि) प्रायः जलफेन से युक्त है, किन्तु शुद्ध धान्य से रहित है।

दो सौ ग्रामों में मुख्य नृसिंहभूमि विख्यात है। यहाँ सुन्दर विश्वम्भरपुर है और आराण नामक नगर भी। यहाँ जगदीशपुर है, जहाँ कुर्मी जाति का सुखप्रद निवास है। यहीं भालुका-घट्ट है, जहाँ सतत लूट-पाट करनेवालों का बहुत डर रहता है। यहाँ तीनों युगों में प्रायः दुष्ट मनुष्यों का वास रहा है। यहाँ बलदेव ने पाँच रात वास किया।

वहाँ त्रिकालज्ञ मुनि ने बलदेव को कृपण-कथा कही, जो कथा व्यास मुनि द्वारा पूर्व में ही कही गयी थी।

हे निमिदेश में निवास करनेवाले महाराज! सम्प्रति उस(कथा) को अनेक प्रकार के कौतुक से और कलियुग के वृत्तान्त से युक्त कर गद्य-पद्य के माध्यम से मैं कहता हूँ, (आप) सुनें।

मुनि के मुख से कृपण की कथा सुनकर बलदेव प्रसन्न हुए और शोण-संगम के तट पर गये।

इस तरह भूपरिक्रमण-ग्रन्थ में नृसिंहतीर्थ-विवरण समाप्त हुआ।

सप्तम प्रस्थान

जनकदेश-विवरण

इसके बाद बलदेव नरहरि नामक देश को छोड़ते ही पाटलि नामक देश गये।

वहाँ देवी का पूजन कर, नगर की शोभा को देखकर, गंगा को पारकर गंगा-गंडकी के संगम पहुँचे। वहाँ स्नान और तर्पण कर, तीरभुक्ति को छोड़कर मुनि के साथ जनकदेश गये।

वहाँ (बलदेव ने) आठ रात वास किया। अनेक तीर्थों के दर्शन किये। यह (जनकदेश) बाईस योजन में व्याप्त है और हजार ग्रामों से युक्त है।

(यहाँ) नीच जाति में उत्पन्न मनुष्य भी प्रायः उदार हुआ करते हैं। जनकपुर के दक्षिण-भाग में, सात योजन दूर हटकर डिगजल नामक महाग्राम है, जहाँ जनक का गृह (महल) है। नदियों में श्रेष्ठ यमुना नदी अत्यन्त वेग से बहती है।

डिगजल के दक्षिण-भाग में, आधे योजन की दूरी पर, देशवासियों में विख्यात गिरिजा नामक ग्राम है। वहाँ (यहाँ) दो नदियों के बीच में एक प्राचीन मन्दिर है। मुनि के साथ बलदेव भैरव-स्थान गये। भैरव की पूजा करके वे सीता-मण्डप गये, जहाँ प्राचीनकाल में सीता के विवाह में ग्रन्थि-बन्धन (गठबन्धन) हुआ था।

सीताकुण्ड के दक्षिण-भाग में तीन कोस दूर हटकर चण्डी-स्थान है, जहाँ देवी जाग्रत् होकर वास करती हैं।

सीताकुण्ड के दक्षिण-भाग में ही देवताओं से शासन-योग्य सुरस्थान है। हे राजन्! उससे दक्षिण सात कोस दूर धनुषग्राम है। काननों के बीच में ही परशुराम-कुण्ड है। वहाँ अहीरों की निवास-भूमि (है)। वहाँ गोरस पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध है। वहाँ ग्रामीण (गँवार) लोग बसते हैं।

गिरिजा के दक्षिण-भाग में पाँच कोस हटकर, गौतमकुण्ड के निकट आहारी नामक महाग्राम है। वहीं अहल्यावट-पूजन स्थान है। इससे सटे हुए, नदियों में विख्यात ह्रस्वा नदी है। आहारी महाग्राम के नजदीक ही (नातिदूर) कमला नदी (बहती) है।

जनकपुर से दक्षिण में पाँच कोस दूर विशोर नामक महाग्राम बाहर में विद्यमान है। वहाँ से पाँच कोस दूर हटकर अरगाजापु-कुण्ड है, वहीं विख्यात दशरथ-कुण्ड है। दशरथ-कुण्ड के समीप गंगासागर-कुण्ड में जलेश्वर महादेव हैं। प्राचीन मन्त्र से सदा जलशयन को छोड़कर जलशयान्तर में प्रविष्ट होते हैं।

सहयात्री वृद्ध मुनि के साथ(उन्होंने) प्रसन्न चित्त से अच्छी तरह पूजा कर मन्दिर के देवता (महादेव) को निमीलित किया।

रात्रि के समय गौतमकुण्ड नामक स्थान में त्रिकालज्ञ महामुनि ने रास्ते की थकान (मार्गश्रम) के निवारण के लिए अन्य वार्त्ता को छोड़कर, अलसकथा सुनाई।

कृपण-कथा

जो न तो (दान) देता है और न भोग करता है अपितु धन को प्राण की तरह सँजोकर रखता है, सुबह-सुबह नाम लेने योग्य नहीं रहने के कारण, कृपण किसे अप्रिय नहीं होता ?

वह ऐसे—

मथुरा में गूढधन नामक एक वैश्य था। वह कला और वाणिज्य आदि से धन की वृद्धि कर अत्यन्त कृपण हो गया। एक बार अकाल (दुर्भिक्ष) आने पर उसने सोचा : इस अकाल में मेरे धन को पत्नी, पुत्र आदि खा जायेंगे। और, मैं तो धनशोक में ही मर जाऊँगा। यह ठीक नहीं है।

क्योंकि—

धनवान् पुरुष अकेला होता है। उसका सबसे बड़ा मित्र है धन। अन्य मित्र तथा (कुटुम्ब) सम्बन्धी-गण धनमूलक होते हैं।

इसलिए भविष्य की चिन्ता करें। दूसरों के नहीं देखने योग्य स्थान में धन को रखें—यह सोचकर वैसा ही किया। तब अकाल आने पर सम्पूर्ण परिवार को अन्न बिना मरते हुए देखकर भी किसी को कुछ नहीं दिया। अपितु प्राण कंठगत होने पर परिवारवालों द्वारा माँगे जाने पर यह पद्य पढ़ा :

कृपण के प्राण हैं धन, वही मुझसे माँगते हो। तब प्राण ही क्यों नहीं ले लेते हो, जिससे धनशोक से मुक्त हो जाऊँ ? इसलिए उसके पुत्र-स्त्री आदि सभी अन्न के बिना मर गये। और उसने स्वयं प्राण-मात्र अवशिष्ट रहने पर सोचा :

अपना अर्जित धन जो पुत्र-पत्नी-पर्यन्त को नहीं दिया, उसे अपने प्राण-रक्षार्थ, बिना व्याकुल हुए, कैसे भोगूँगा ?

इसलिए अपनी प्राण-रक्षा के लिए भी धन का उपयोग नहीं किया। उपवास से दिन बिताते हुए उसे अत्यन्त दुर्बल देखकर उस नगर के वासियों में से कोई कारुणिक व्यक्ति बोला—हे कृपण ! उस धन से क्या करोगे, जिसके रहने पर भी अपने प्राण का जाना सहते हो ? अथवा, यह भी उचित ही है।

क्योंकि—

कृपण उपार्जन करने में कष्ट पाता है, खर्च करने में शोक पाता है। धन से दान और उपभोग (किसी) का सुख नहीं पाता है। और भी—

जो (धन) न तो उत्साह से दान किया जाय, न इच्छानुसार भोग किया जाय, वह धन केवल क्षति के लिए दुःख का कारण है अथवा जमा करनेवाले के लिए खेद का कारण है।

गूढधन ने कहा—हे नगरवासी लोग ! कुछ भी करें, लेकिन मुझे प्राण देकर भी धन खर्च करना स्वीकार नहीं है।

उन लोगों ने कहा—तब तुम्हारे मरने पर तुम्हारा धन, राजा अथवा चोर के द्वारा ले लिया जायगा।

गूढधन ने कहा—दूसरे बुद्धिहीनों का ही धन अन्य व्यक्ति ले लेता है। मैं तो अपने धन को अपनी गर्दन में बाँधकर मरूँगा। यह कहकर, धन की पोटली (गठरी) को लेकर गंगा-किनारे मरने के लिए गया। वहाँ नाववाले मल्लाह के समीप जाकर बोला—

भाई नाविक ! मेरे प्राण कठोर हैं। मैं प्राण छोड़ना चाहता हूँ, फिर भी छोड़ नहीं सकता हूँ। इसलिए तुम, परिवार-शोक से व्याकुल मुझे, गंगा में डुबाकर मार दो। इसके (इनाम) पुरस्कार में तुझे सोने का एक खण्ड (टुकड़ा) दूँगा।

नाविक ने कहा—अच्छा, तो सोने का खण्ड दें।

तब गूढधन ने सोने को (प्रकट कर) बाहर निकालकर दिखलाया।

देख(दिखा)कर वह फिर बोला—भाई नाविक ! सभी सुवर्ण आग में तपाकर विशुद्ध किये हुए हैं, दूसरे को देने योग्य नहीं हैं। इसलिए पुण्य के लिए ही मुझे मार डालो।

नाविक (भी) उस सोने को देख लोभाकृष्ट होकर उससे बोला—(ठीक है) सोने का खण्ड मुझे मत दें। पुण्य के लिए ही मैं (तुझे) आपको मार देता हूँ। तब उसे पानी में डुबाकर प्राणहीन (निष्प्राण) करके सोना लेकर यह नाविक कृतार्थ (धन्य-धन्य) हो गया।

श्लोक है—

जो न किसी का उपकार करेगा, न कोई भोग करेगा, वैसे कृपण के हाथ में जो धन गया उसका परिणाम बुरा होता है—(वह) हृदय में खेद उत्पन्न करता, कोई शुभ (मंगल) नहीं करता, यश को दूर करता (मिटाता) और ग्लानि उत्पन्न करता है।

इस तरह कृपण-कथा समाप्त हुई।

अलसकथा

ऐसा है कि—

उद्योग (उद्यम) का हेतु (कारण) है उत्साह। इसे सभी प्रकार की क्रियाओं में प्राणियों का धर्म कहा जाता है। इस (उत्साह) के विना लोग आलसी होते हैं।

मिथिला में वीरेश्वर नामक मन्त्री थे। वे स्वभाव से दानशील और दयालु थे। दुर्गति में पड़े अनाथों को प्रतिदिन यथेच्छ भोजन दिलाते थे। उनमें आलसियों को भी अन्न-वस्त्र दिलाते थे। कारण—जिसकी कोई गति न हो ऐसे (दुर्गत) लोगों में आलसी का स्थान प्रथम माना गया है। (क्योंकि वह) पेट की आग (भूख) से (जलते हुए) भी कोई कार्य नहीं कर सकता है। अथवा आलस्य परम सुख का स्थान है। क्योंकि—

जो मनुष्य केवल आलस्य के वश में है, लगता है, उसके निद्रा-सुख को केवल पेट की आग (भूख) ही हरण करती है। (नहीं तो) उसका मन कहीं रहता है, और (शरीर के) अंग कहीं, और उसकी आत्मा कार्य करने की इच्छा के रस (आनन्द) का भी श्रम नहीं उठाती है।

इसके बाद, आलसियों को वहाँ इष्टलाभ होता है—यह सुनकर बहुत (कतिपय) आलसी लोग वहाँ इकट्ठे हो गये। क्योंकि—

सबके इकट्ठा (एकत्र) होने का कारण सौकर्य (आसानी) है। सजातीय (अपने वर्ग के लोगों) के सुख को देखकर कौन प्राणी नहीं दौड़ता है?

पीछे (बाद में) आलसियों के सुख को देखकर धूर्त्त लोग भी कृत्रिम (बनावटी) आलस्य दिखाकर भोजन ग्रहण करने लगे। इसके बाद अलसशाला में अधिक द्रव्य का खर्च देखकर वहाँ नियुक्त लोगों ने विचार किया कि स्वामी तो दयावश, केवल आलसियों को अक्षम समझकर वस्तुएँ (सामग्री) दिलाते हैं, छल-कपट से निरलस (जो आलसी नहीं हैं) लोग भी लेते हैं। यह हमलोगों की असावधानी (अनवधानता) है। इस तरह हमलोगों के दोष से स्वामी का धन व्यर्थ ही विनष्ट हो रहा है, इसके लिए हमलोग दोषी (हैं) होंगे। यदि हो सके तो आलसी लोगों की परीक्षा करें—यह विचारकर जब वे आलसी लोग ऊँघने लगे, तब वे नियोगी पुरुष अलसशाला में आग लगाकर देखने लगे।

तब घर में लगी धधकती आग को देखकर सभी धूर्त्त भाग गये। इसके बाद (जो) अल्प आलसी (थे वे) भी भाग गये। चार व्यक्ति वहीं सोये (लेटे)

अलसकथा

ऐसा है कि—

उद्योग (उद्यम) का हेतु (कारण) है उत्साह। इसे सभी प्रकार की क्रियाओं में प्राणियों का धर्म कहा जाता है। इस (उत्साह) के बिना लोग आलसी होते हैं।

मिथिला में वीरेश्वर नामक मन्त्री थे। वे स्वभाव से दानशील और दयालु थे। दुर्गति में पड़े अनाथों को प्रतिदिन यथेच्छ भोजन दिलाते थे। उनमें आलसियों को भी अन्न-वस्त्र दिलाते थे। कारण—जिसकी कोई गति न हो ऐसे (दुर्गत) लोगों में आलसी का स्थान प्रथम माना गया है। (क्योंकि वह) पेट की आग (भूख) से (जलते हुए) भी कोई कार्य नहीं कर सकता है। अथवा आलस्य परम सुख का स्थान है। क्योंकि—

जो मनुष्य केवल आलस्य के वश में है, लगता है, उसके निद्रा-सुख को केवल पेट की आग (भूख) ही हरण करती है। (नहीं तो) उसका मन कहीं रहता है, और (शरीर के) अंग कहीं, और उसकी आत्मा कार्य करने की इच्छा के रस (आनन्द) का भी श्रम नहीं उठाती है।

इसके बाद, आलसियों को वहाँ इष्टलाभ होता है—यह सुनकर बहुत (कतिपय) आलसी लोग वहाँ इकट्ठे हो गये। क्योंकि—

सबके इकट्ठा (एकत्र) होने का कारण सौकर्य (आसानी) है। सजातीय (अपने वर्ग के लोगों) के सुख को देखकर कौन प्राणी नहीं दौड़ता है?

पीछे (बाद में) आलसियों के सुख को देखकर धूर्त्त लोग भी कृत्रिम (बनावटी) आलस्य दिखाकर भोजन ग्रहण करने लगे। इसके बाद अलसशाला में अधिक द्रव्य का खर्च देखकर वहाँ नियुक्त लोगों ने विचार किया कि स्वामी तो दयावश, केवल आलसियों को अक्षम समझकर वस्तुएँ (सामग्री) दिलाते हैं, छल-कपट से निरलस (जो आलसी नहीं हैं) लोग भी लेते हैं। यह हमलोगों की असावधानी (अनवधानता) है। इस तरह हमलोगों के दोष से स्वामी का धन व्यर्थ ही विनष्ट हो रहा है, इसके लिए हमलोग दोषी (हैं) होंगे। यदि हो सके तो आलसी लोगों की परीक्षा करें—यह विचारकर जब वे आलसी लोग ऊँघने लगे, तब वे नियोगी पुरुष अलसशाला में आग लगाकर देखने लगे।

तब घर में लगी धधकती आग को देखकर सभी धूर्त्त भाग गये। इसके बाद (जो) अल्प आलसी (थे वे) भी भाग गये। चार व्यक्ति वहीं सोये (लेटे)

हुए आपस में बातचीत करते रहे। एक ने, कपड़े से मुँह को ढँके हुए ही कहा—यह हल्ला (कोलाहल) क्यों है ?

दूसरे ने कहा—देखता हूँ कि इस घर में आग लगी हुई है।

तीसरे ने कहा—कोई ऐसा धार्मिक नहीं है, जो अभी जल से भींगे कपड़े से अथवा चटाई से हमलोगों को ढँक देता।

चौथे ने कहा—अरे वाचाल (बक-बक करनेवाले) ! कितना बोल रहे हो ? चुप नहीं रह सकते ?

तब उन चारों के परस्पर वार्त्तालाप को सुनकर और बढ़ी हुई आग को उनके ऊपर गिरते (गिरने की स्थिति) देखकर, वहाँ नियुक्त (नियोगी) पुरुषों ने वध लगने के भय से, चारों आलसियों को शिखा पकड़कर बाहर कर दिया। तब उन्हें देखकर नियोगी पुरुषों ने पढ़ा (कहा)—

पति ही स्त्रियों की गति होते हैं, बच्चों की गति होती है माता, (किन्तु) इस संसार में, आलसियों की गति, दयालुओं के अलावा कोई (दूसरी) नहीं (होती) है।

इसके बाद उन चारों आलसियों को मन्त्री ने उससे (पहले से) भी अधिक वस्तु दिलवाई।

(इस तरह) अलसकथा समाप्त हुई।

अन्वय और व्यतिरेक (दोनों प्रकार) से वीर का लक्षण कहा गया और कथा के द्वारा दोनों का उदाहरण भी कहा गया।

(इस तरह) विद्यापति-कृत भूपरिक्रमण ग्रन्थ के जनकदेश-विवरण के प्रसंग में अलसकथा समाप्त हुई।

राजा की आज्ञा से १५३७ संख्यक वर्ष[1] बीतने पर इन सबकी परीक्षण-वृत्ति की।

१. 'अंकस्य वामा गतिः' के अनुसार मुनि (७), राम (३), बाण (५), शशि (१) अर्थात् १५३७ होता है।

परिशिष्ट (क)

ग्रन्थस्थ श्लोकानुक्रमणी

प्रथम प्रस्थान

		पृष्ठ-संख्या
१.	नत्वा गणपतिं साम्बं	१
२.	देवसिंह निदेशाच्च.	,,
३.	पुराणानि च तन्त्राणि	,,
४.	अग्निपुराणवक्तारं	,,
५.	नयानुरोधेन गुणेन वाचां	३
६.	पुरुषाः परिचोयन्ते	,,
७.	अव्यापार पराङ्मुखस्य	४
८.	नैकाकी निर्णयं कुर्यात्	,,
९.	लभ्यन्ते पुरुषाकाराः	,,
१०.	वीरः सुधी सविद्यश्च	,,
११.	वीरः शौर्यविवेकाभ्याम्	,,
१२.	शौर्यं कार्पण्यराहित्यं	५
१३.	दानवीरो हरिश्चन्द्रो	,,
१४.	कलौ शिक्षाहेतुर्न खलु	,,
१५.	सत्ये त्रेतायुगे चैव	,,
१६.	स्मृतेनोच्चार्यमाणेन	६
१७.	विप्रैः सन्तुष्टचित्तैः	,,
१८.	शूरान्निरोधयति	,,
१९.	पुंसां प्रथममुल्लेख्यो	१०

द्वितीय प्रस्थान

१.	दयालुः पुरुषः श्रेष्ठः	१४
२.	राजानः पिशुनाः सर्पा	,,
३.	जीवितार्थं कुलं त्यक्त्वा	,,
४.	भौतिकेन शरीरेण	१६
५.	मा जीवन्तु स्त्रियोऽनाथा	,,
६.	भटैरङ्गीकृतं युद्धं	,,
७.	ते प्रासादा निरुपम गुणास्ताः ...	१७

तृतीय प्रस्थान

		पृष्ठ-संख्या
१.	कातरः शूरतां याति	२१
२.	पराश्रयेण जीवन्ति कातराः ...	,,
३.	अर्जितं भुज्यते यस्य	,,
४.	आदरो दुर्लभो राज्ञां	,,
५.	धनं तृष्णावतः प्राणाः	२२
६.	यत्करिष्ये स्वयं कर्म मोक्ष्ये... ...	२३
७.	युक्तं तुल्यबले युद्धं	,,
८.	यशश्चिचीषया येन	२४
९.	यशः कामनया पुंसां	,,
१०.	प्राणत्राणाय सङ्ग्रामात्	,,
११.	दिक्पालाः कृतसाक्षिणश्च... ...	२५
१२.	अशीतिवर्षदेशीयः	,,
१३.	अस्माभिः कृतसङ्ग्रामो	,,
१४.	तच्छौर्यं मल्लदेवस्य	२६

चतुर्थ प्रस्थान

१.	कलौ कामादिभिर्युक्तो	३०
२.	स्वीकृतं दुष्करं कर्म	३१
३.	अनेन तव सत्येन	३२
४.	विवेकेन विना चौरो	३३
५.	दयादानादिभिस्त्यक्तो	,,
६.	विवेकेन विना शूरः	,,
७.	एक एवहि नीतिज्ञः	३५
८.	ज्ञातसारोऽपि शूरोऽपि	,,
९.	येनान्ये प्रभवन्ति भूमिवलये ...	,,
१०.	पापे नियोजयति भोजयतीह ...	,,
११.	आक्रमे पतितां दृष्ट्वा	३६
१२.	दुर्बलस्य गुरुर्भावो	,,
१३.	काणेन चक्षुषा जन्तुर्यथा	३७
१४.	एकस्य कृपया तस्मै	,,
१५.	यशः पुण्यं सुखं चेति	,,
१६.	रमते च परस्त्रीभिः	,,
१७.	नावसीदति पापेन	,,
१८.	अपिद्विपघटाकीर्णमपि	३८
१९.	स्वयं कृतानि कर्माणि	,,

			पृष्ठ-संख्या
२०.	सा लज्जा साहसाङ्कस्य ...	...	३८
२१.	हीनसंवर्द्धनासक्तो हीयते ...	...	,,
२२.	उल्लंघ्यास्तुपुरो ...	...	,,

पञ्चम प्रस्थान

१.	पुमान् शौर्यविहोनस्तु ...	...	४३
२.	अपदेऽप्यापदा शङ्का ...	...	,,
३.	यः शान्तप्रकृती राजा ...	...	,,
४.	शत्रवः पिशुना रोगाः ...	...	,,
५.	अपि सर्वस्वमुत्सृज्य ...	...	४४
६.	अशक्तौ च विपत्तौ च ...	...	,,
७.	सौभाग्यं परसौन्दर्यात् ...	...	,,
८.	भीरुं नोपशेते जनो ...	...	४५
९.	गिरिकम्बुरलीनोऽपि ...	...	,,
१०.	स्वेन दोषेण दुष्टात्मा ...	...	,,
११.	भेतव्यं नापदस्तस्याः ...	...	,,

सप्तम प्रस्थान

१.	न ददाति न चाश्नाति ...	...	५२
२.	एकाकी पुरुषः श्रीमान् ...	...	,,
३.	कृपणस्य धनं प्राणाः ...	...	,,
४.	अर्जने लभते खेदं ...	...	,,
५.	दीयतेन यदुत्साहात् ...	...	५३
६.	जनयति हृदिखेदं ...	...	,,
७.	उद्योगहेतुरुत्साहः ...	...	५४
८.	दुर्गतीनां च सर्वेषाम् ...	...	५४
९.	कुत्रापि तिष्ठति मनः ...	...	,,
१०.	स्थिति सौकर्यमूलाहि ...	...	,,
११.	पतिरेव गतिः स्त्रीणां ...	...	५५

परिशिष्ट (ख)

ग्रन्थ में प्रयुक्त ग्राम और नगर

(क) ग्राम

(१) अरेल:
(२) अष्ट्रग्राम:
(३) आङ्गुलिग्राम:
(४) आहारीग्राम:
(५) करेठ:
(६) करेल:
(७) कर्णपुरम् (महाग्राम:)
(८) काष्टाग्राम:
(९) गण्डाहग्राम:
(१०) गिरिजाग्राम:
(११) चकोरनयनी
(१२) डिजगल: (महाग्राम:)
(१३) ताजपुरम् (महाग्राम:)
(१४) दानकग्राम:
(१५) द्वादशग्राम:
(१६) धनुषग्राम:
(१७) फतेपुरम्
(१८) बालियग्राम:
(१९) भद्रग्राम:
(२०) मधुग्राम:
(२१) मलका
(२२) मायग्राम:
(२३) लोहडिग्राम:
(२४) वलिग्राम:
(२५) वालिग्राम:
(२६) विशोर:
(२७) शृङ्गवेर:
(२८) सेराजग्राम:
(२९) हट्टपुरम् (महाग्राम:)

(ख) नगर

(१) उज्जयिनी
(२) कल्याणपुरम्
(३) कान्यकुब्जम्
(४) कालकोठम्
(५) काशी
(६) कुलपिपुरम्
(७) कुलस्तम्भम्
(८) कुसुमपुरम्
(९) खर्जरीपुरम्
(१०) चतुर्वेदपुरम्
(११) चन्द्रपुरम्
(१२) चन्द्रातपा
(१३) जगदीशपुरम्
(१४) जनकपुरम्
(१५) द्रुपदपुरम्
(१६) नीलकण्ठपुरम्
(१७) पाटलिनगरम्
(१८) प्रतिष्ठानपुरम्
(१९) प्रतिष्ठानपुरवरम्
(२०) प्रयागम्
(२१) मथुरा
(२२) योगिनीपुरम्
(२३) लाक्षागेहम्
(२४) लोलपुरम्
(२५) वाराणसी
(२६) विश्वम्भरपुरम्
(२७) विस्तीर्णपुरम्
(२८) वेणुपुरम्
(२९) शातनीपुरम्
(३०) हस्तिकर्णपुरम्
(३१) हस्तिनापुरम्
(३२) होरजपुरम्

परिशिष्ट (ग)

ग्रन्थ में प्रयुक्त तीर्थ

(१) अरगाजापुकुण्डम्
(२) अहल्याकूपः
(३) अहल्यावटः
(४) अहल्यावाटिका
(५) आदिकेशवस्थानम्
(६) आमोदकाननम्
(७) कर्दमेश्वरम्
(८) कापिलतीर्थम्
(९) कालेश्वरम्
(१०) काशी
(११) गङ्गासागरम्
(१२) गोतमकुण्डम्
(१३) चण्डीस्थानम्
(१४) चम्पारण्यम्
(१५) च्यवनाश्रमम्
(१६) त्रिकोणक्षेत्रम्
(१७) त्रिदलकाननम्
(१८) त्रिविक्रमस्थानम्
(१९) दशरथकुण्डम्
(२०) दशाश्वमेघम्
(२१) द्रौपदीहरणम्
(२२) नृसिंहतीर्थम्
(२३) नैमिषम्
(२४) परशुरामकुण्डम्
(२५) भरद्वाजाश्रमम्
(२६) भार्गवस्थानम्
(२७) भैरवस्थानम्
(२८) मध्यमेश्वरम्
(२९) रामेश्वरम्
(३०) वल्मीकडिचम्
(३१) वामनाश्रमम्
(३२) वाल्मीकाश्रमम्
(३३) विश्वामित्रस्थलम
(३४) शूलेशम्
(३५) सरस्वतीकुण्डम्
(३६) सारनाथम्
(३७) सिद्धाश्रमम्
(३८) सिद्धिकुण्डम्
(३९) सीताकुण्डम्
(४०) सीतामण्डपभूमिः
(४१) सुकर्म्मभूमिकम्
(४२) सूत्रपाणिः
(४३) सूतपीठम्
(४४) सूरस्थानम्
(४५) सोमेश्वरम्
(४६) सौरि
(४७) स्वर्गभूमिः

परिशिष्ट (घ)

ग्रन्थ में प्रयुक्त नदियाँ

(१) असिः
(२) कमला
(३) कर्म्मनाशा
(४) कल्याणी
(५) कालिन्दी
(६) गङ्गा
(७) गण्डकी
(८) गोमती
(९) तटिनी
(१०) नालिका
(११) यमुना
(१२) रामरेखा
(१३) वरणा
(१४) शोण नदी
(१५) सरयू
(१६) सुरपुरधुनी
(१७) ह्रस्वा